अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जून २०२०

पशुओं का सौन्दर्य

अग्निशिखा जून २०२० **वर्ष ५०, अंक ११, पूर्णांक ५९८**

विषय-सूची

सन्देश/सम्पादकीय		३
पशु-जाति		५
मनुष्य तथा पशु		१४
पशुओं के साथ बरताव		२२
पशुओं के साथ माँ का अनोखा सम्बन्ध		२६
आश्रम के पशुओं की कहानियाँ		३६
'पुरोधा': दैनन्दिनी		४२
एक शिष्या के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४५
'योग के तत्त्व' : कुछ व्याख्याएँ	श्रीअरविन्द	४७
'नयी कोंपलें' : जादू की कड़ी	अनुष्का राय	५३
कपाट हमेशा खुले रहेंगे	वन्दना	५४

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तें स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,

पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

मानवजाति अपनी वर्तमान अवस्था में अब भी पशु के स्तर पर है; इसलिए, भगवान् के बारे में सचेतन बन सकने के लिए, सच्चा मनुष्य बनने के लिए, हमें इस सामान्य मानव स्तर से परे जाना होगा।

—श्रीमाँ

सम्पादकीय : जीवन के प्रति मनुष्यजाति का रवैया हमेशा से बहुत आत्म-केन्द्रित रहा है। हम मानते हैं कि हम ही उच्चतम हैं, हम ही सबसे उत्तम प्राणी हैं और धरती की सभी चीज़ों का उपभोग करने का हमारा प्रायः एकाधिकार है। हमें यह विश्वास होता है कि पृथ्वी की सभी चीज़ें और सभी प्राणी हमारी ही सेवा के लिए, हमारे ही आनन्द के लिए धरती पर जी रहे हैं। हम यह भी मानते हैं कि हम ही हैं धरती की धुरी और यहाँ तक कि भगवान् को भी बस हमारी ही इच्छाओं और कामनाओं को तुष्ट और परिपूर्ण करना चाहिये। मनुष्य के इन विविध अज्ञानों और दर्पों के कारण धरती लुट गयी है, इस पर इतना मानव-निर्मित असन्तुलन और इतनी कुरूपता छा गयी है कि 'प्रकृति' को इसे ठीक करने के लिए समय-समय पर बहुत तीव्र उपाय अपनाने पड़ते हैं। शायद अब समय आ गया है कि मानव यह समझ ले कि पशुओं, पेड़-पौधों को भी बने रहने का अधिकार है और मनुष्य को उन्हें भगवान् के ऐसे प्राणी मानना चाहिये जिन पर प्रभु अपनी सृष्टि के अन्य सभी प्राणियों के जितना—शायद अधिक ही—स्नेह रखते हैं।

हमारा यह अंक समर्पित है, पशु के जीवन के प्रति मानव की अधिक सच्ची समझ पर, और साथ ही हम इसमें दिव्य माँ की सुनायी पशुओं के प्रति प्रेम–सम्बन्धी प्रेरणात्मक कहानियाँ भी दे रहे हैं।

महालक्ष्मी—सभी सत्ताओं की जननी

> *मधुर माँ, मैं यह नहीं समझ पाया : "यह महालक्ष्मी की शक्ति है, और शरीरधारी सत्ताओं के हृदय के लिए 'भागवत शक्ति' का और कोई रूप इतना आकर्षक नहीं है।"*

इसका मतलब है मनुष्य। धरती पर मानव-सत्ताएँ, धरती पर रहने वाली सत्ताएँ—इसे कहने का यह एक और तरीक़ा है। और यह भी है... इसका मतलब पशुओं से भी है। वे पशुओं के प्रति बहुत-बहुत स्नेहपूर्ण हैं और पशुओं को भी वे बहुत प्रिय हैं; बहुत उग्र पशु भी उनके सामने मृदु बन जाते हैं, और इसी कारण "मनुष्य" शब्द रखने की जगह, उन्होंने "शरीरधारी सत्ताएँ" रखा है, ऐसी सत्ताएँ जो सशरीर धरती पर हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२१

पशु-जाति

चैत्य तत्त्व

श्रीअरविन्द : मनुष्य का अज्ञान ही यह सोचता है कि संसार में वही सबसे ऊँची सत्ता है। कई मनुष्यों की अपेक्षा बहुत सारे कुत्तों में कहीं ज़्यादा उदात्त चैत्य सत्ता होती है!...

शिष्य : तब यह कैसी बात है कि मनुष्य को सृष्टि की उच्चतम सत्ता माना जाता है?

श्रीअरविन्द : यह मनुष्य का अहंकारात्मक अज्ञान ही है जिसके अधीन वह ऐसा सोचता है। वह महान् इसलिए है क्योंकि उसके अन्दर भागवत जीवन में विकसित होने की सम्भावना होती है। तुम यह भी कह सकते हो कि वह महान् इसलिए भी है क्योंकि उसने मन को विकसित कर लिया है और मन उसे सचेतन क्रमविकास का सुअवसर देता है। लेकिन इससे अनिवार्यतः यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि चूँकि मनुष्य मानसिक प्राणी है, उसने अपने विकास, अपनी प्रगति के लिए मन का उपयोग किया है। ठीक-ठीक इस कारण कि मनुष्य के पास एक मन है, उसके अन्दर दानव बनने की भी असंख्य सम्भावनाएँ होती हैं। वह अपने मनरूपी दानव की सहायता लेता है, और जानते हो, स्वयं दानव भी उतना बुरा नहीं हो सकता जितना मनुष्य तब होता है जब वह अपने मन को अपनी प्राणिक सत्ता की सेवा में लगा देता है।

शिष्य : अनन्त सम्भावनाएँ! दिव्य तथा दानवीय—दोनों ही रूपों में!

श्रीअरविन्द : मनुष्य का अहंकारात्मक अज्ञान ही उसके अन्दर यह सोच भर देता है कि वह सृष्टि में उच्चतम है।

शिष्य : लेकिन, मनुष्य तथा पशु के शरीर में तो बहुत फ़र्क है।

श्रीअरविन्द : हाँ बस यही बात है; और सच पूछो तो वह इतना भी नहीं है जितना तुम भेद निकालने की कोशिश में लगे रहते हो।

अन्ततः, मनुष्य तथा पशु के शरीर में क्या भेद है? अगर तुम ग़ौर से देखो तो पाओगे कि तुमने पूँछ का बहिष्कार कर दिया है, और चार पैरों पर चलने की जगह तुम दो पर चलते हो, बाक़ी दो को तुमने हाथों का रूप दे दिया है। मस्तिष्क में हलके, लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं और कुछ इधर-उधर, छोटे-मोटे अन्य परिवर्तन हुए हैं। तुमने अपने लम्बे लोमों और सींगों से छुटकारा पा लिया है।

शिष्य : सब मनुष्यों ने नहीं! 'क' के शरीर पर अभी तक बहुत लोम हैं (हँसी)।

श्रीअरविन्द : देखो, शरीर में ये कोई इतने बड़े परिवर्तन भी नहीं हैं जो मनुष्य और पशु के बीच खाई खड़ी कर दें!

पुराणीकृत 'सान्ध्य-वार्ताओं' से

... बच्चे के अन्दर की यह छोटी-सी सत्य वस्तु उसके चैत्य पुरुष में विराजमान भागवत 'उपस्थिति' है—यह पौधों और जानवरों में भी होती है। पौधों में यह सचेतन नहीं होती, जानवरों में सचेतन होना आरम्भ करती है, और बच्चों में बहुत सचेतन होती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३१

पशुओं की बुद्धिमानी

श्रीअरविन्द : लोग कहते हैं कि जानवर सोच-विचार नहीं सकते, तर्क नहीं कर सकते। यह बात सच बिलकुल नहीं है। उनकी बुद्धिमत्ता बस इतनी विकसित हुई है कि वे जीवन की सँकरी सीमाओं में रहते हुए, अपनी आवश्यकताओं के अनुसार, क्रिया कर सकें। लेकिन उनके अन्दर प्रसुप्त शक्तियाँ हैं जो विकसित नहीं होतीं।

बिल्लियों की अपनी भाषा होती है। वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न तरीक़ों से म्याऊँ-म्याऊँ करती हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई बिल्ली अपने बच्चों को किसी बक्से इत्यादि के पीछे छोड़ कर जाती है तब एक ख़ास तरीक़े से, ख़ास लय में म्याऊँ करती है, और बच्चे समझ जाते हैं कि जब तक माँ वापस आकर वही म्याऊँ-म्याऊँ न दोहराये, उन्हें उस जगह से हिलना नहीं है।

यहाँ तक कि गधे भी, जिन्हें एकदम बेवकूफ़ माना जाता है, कभी-कभी असाधारण रूप से चतुराई का प्रदर्शन करते हैं। एक बार कुछ घोड़ों और गधों को एक साथ एक बाड़े में यह देखने के लिए बन्द कर दिया गया कि वे बाहर निकल पाते हैं या नहीं। घोड़े तो असहाय से बने रहे, इधर एक गधे ने बाड़े के दरवाज़े की कुण्डी हटा कर दरवाज़ा खोल दिया। इतनी दूर क्यों जायें? हमारे यहाँ आश्रम में, चीकू बिल्ली असाधारण रूप से चतुर थी। एक बार वह एक कमरे में बन्द हो गयी। किसी ने देखा कि वह खिड़की ठीक उसी तरीक़े से खोलने की कोशिश कर रही थी जैसे माताजी खोला करती थीं। चीकू ने माँ को बड़े ग़ौर से खोलते हुए देखा होगा।

हमारे यहाँ एक कुत्ती थी, हम किराये के जिस मकान में रहने गये थे वहीं उसे कोई छोड़ कर चला गया था। एक बार वह बाहर ही रह गयी। दरवाज़े को धकेल कर खोलने में असमर्थ वह सोचने लगी, "अन्दर कैसे जाया जाये?" जिस तरह वह बैठी थी, जिस तरह उसका सिर एक तरफ़ झुका हुआ था, जिस अन्दाज़ में वह देख रही थी उससे एकदम साफ़ दीख रहा था कि वह सोच रही है। फिर अचानक वह उठ खड़ी हुई, मानों अपने-आपसे कह रही हो, "ओह, ग़ुसलख़ाने का भी तो दरवाज़ा है। चलो, वहाँ से कोशिश की जाये।" और वह उस दिशा में गयी। वह दरवाज़ा खुला था और वह अन्दर चली गयी।

यूरोप के लोग मनुष्य और पशु में बहुत बड़ा फ़र्क मानते हैं। फ़र्क केवल इतना ही होता है कि जानवर धारणाएँ नहीं बना सकते, पढ़-लिख नहीं सकते, दार्शनिक नहीं बन सकते।

न : वे योग भी नहीं कर सकते।

श्रीअरविन्द : उसके बारे में मैं नहीं जानता। एक बार, जब श्रीमाँ और मैं ध्यान कर रहे थे, एक बिल्ली भी वहाँ थी। हमने देखा कि वह अजीब हरकतें कर रही है। वह तो गहरे ध्यान में चली गयी थी और अपने शरीर से निकल कर मरने ही वाली थी कि अचानक वह स्वस्थ हो गयी। निश्चित रूप से वह किसी चीज़ को ग्रहण करने की कोशिश में लगी थी।

पुराणीकृत 'सान्ध्य-वार्ताओं' से

भागवत चिनगारी

हाँ, यह नहीं कहा जा सकता कि हर मनुष्य में चैत्य सत्ता है और इसी तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी जानवर उससे वञ्चित हैं। बहुत-से जानवरों में, जो मनुष्य के साथ रहे हैं, चैत्य का आरम्भ दिखायी देता है और बहुत बार हमें ऐसे लोग मिलते हैं जो पशु के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। यहाँ भी, बहुत कुछ समतल किया गया है। लेकिन सब मिला कर देखें तो सच्चे अर्थों में चैत्य मानव स्तर पर ही शुरू होता है : इसीलिए कैथोलिक धर्म का कहना है कि सिर्फ मनुष्य में अन्तरात्मा होती है, सिर्फ़ मनुष्य में ही यह सम्भावना है कि चैत्य पूरा विकास पा सके और अन्त में ऊपर से उतरते हुए देव के साथ मिल कर एक हो सके।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६४

बहुत-से लोग कहते हैं कि जब वे सोचते हैं तब उनमें "चेतना" होती है—जब कोई नहीं सोचता तब वह सचेतन नहीं होता। परन्तु पौधे पूर्ण रूप में सचेतन होते हैं जब कि वे सोचते नहीं। उनमें बहुत सही संवेदन होते हैं जो चेतना की ही अभिव्यक्ति होते हैं, परन्तु वे सोचते नहीं। पशु सोचना आरम्भ करते हैं परन्तु उनकी प्रतिक्रियाएँ बहुत अधिक जटिल होती हैं। परन्तु पौधे और पशु दोनों सचेतन होते हैं। मनुष्य ज़रा भी विचार किये बिना संवेदन के विषय में सचेतन हो सकता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २८५-८६

पशुओं में चैत्य

जानवरों में भी कभी-कभी बहुत तीव्र चैत्य सत्य विद्यमान रहता है। स्वाभाविक है कि एक पशु की अपेक्षा एक बालक में चैत्य पुरुष कुछ अधिक गठित, कुछ अधिक सचेत होता है, ऐसा मैं समझती हूँ। परन्तु मैंने जानवरों के साथ, केवल जानने के लिए, परीक्षण किये हैं; मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मनुष्यों में मैंने बहुत सहज, बहुत सरल गुणों को विरले ही देखा है। उन्हीं गुणों को मैंने पशुओं में देखा है, जैसे बिल्लियों में : मैंने बिल्लियों का बहुत अध्ययन किया है; यदि कोई उन्हें भली प्रकार जाने तो वे अद्‌भुत प्राणी हैं। मैंने ऐसी माँ-बिल्लियों को देखा है जिन्होंने अपने बच्चों के लिए पूर्णतः अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया—लोग इतने अधिक आदर के साथ मातृ-प्रेम की चर्चा करते हैं, मानों यह केवल मानवीय विशेषता हो। परन्तु मैंने माँ-बिल्लियों के अन्दर साधारण मनुष्य की क्षमता के परे की मात्रा में इसे अभिव्यक्त होते हुए देखा है। मैंने एक माँ-बिल्ली को देखा है जो तब तक अपना खाना कभी छूती भी नहीं थी जब तक कि उसके बच्चे अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण न कर लें। मैंने एक दूसरी बिल्ली को देखा है जो आठ दिन तक लगातार अपने बच्चों के पास, स्वयं अपनी कोई आवश्यकता पूरी किये बिना, पड़ी रही, क्योंकि वह उन्हें अकेले छोड़ने से डरती थी; और एक बिल्ली अपने बच्चे को यह सिखाने के लिए कि एक दीवार से एक जँगले तक कैसे कूदना चाहिये, पचास बार से अधिक एक ही क्रिया दोहराती रही और मैं इतना और जोड़ दूँ कि वह ऐसी सावधानी, बुद्धिमत्ता, कुशलता के साथ करती रही जो बहुत-सी अशिक्षित औरतों में नहीं होती। और ऐसा क्यों था?—क्योंकि वहाँ कोई मानसिक हस्तक्षेप नहीं था। यह एकदम स्वाभाविक सहज बोध था। परन्तु सहज बोध है क्या चीज़?—जाति-विशेष में विद्यमान भगवान् की उपस्थिति, और वही है पशुओं का चैत्य; व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत चैत्य।

मैंने पशुओं में सभी प्रकार की भावात्मक, स्नेहात्मक, भावुकतापूर्ण प्रतिक्रियाओं को, सभी प्रकार की भावनाओं और बोधों को देखा है जिनके लिए मनुष्य इतना गर्व करते हैं। बस, अन्तर इतना है कि पशु उनके विषय में बातें नहीं कर सकते और कुछ लिख नहीं सकते, इसलिए हम उन्हें निम्नकोटि के प्राणी मानते हैं, क्योंकि वे जो कुछ अनुभव करते हैं उनके

बारे में पुस्तकों की बाढ़ नहीं ला देते।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३२-३३

प्रजातिओं की आत्मा

पशुओं की इन्द्रियाँ मनुष्यों की इन्द्रियों की अपेक्षा बहुत अधिक पूर्ण होती हैं। उदाहरणार्थ, मैं चुनौती देती हूँ कि तुम किसी आदमी को उसी तरह खोज निकालो जैसे कि एक कुत्ता ढूँढ़ लेता है!

इसका मतलब है कि क्रमविकास के मोड़ पर अथवा यों कहें कि उसकी चक्राकार गति के अन्दर पशु (और इस प्रकार के अधिक पशु वे हैं जिन्हें हम "उच्चतर" पशु कहते हैं, क्योंकि वे अधिक घनिष्ठ रूप में हमसे मिलते-जुलते हैं) अपनी प्रजाति की आत्मा के द्वारा शासित होते हैं जो एक बहुत ही सचेतन चेतना है। मधुमक्खियाँ, चींटियाँ प्रजाति की इस आत्मा का अनुसरण करती हैं जो एक बिलकुल विशेष प्रकार की होती है। और जिसे पशुओं की "सहज प्रवृत्ति" कहते हैं वह महज़ प्रजाति की आत्मा की आज्ञानुवर्तिता है जो यह सर्वदा जानती है कि क्या चीज़ करनी चाहिये और क्या नहीं करनी चाहिये। इसके बहुत सारे उदाहरण हैं, समझे। तुम एक गाय को चरागाह में छोड़ दो; वह चारों ओर घूमती है, सूँघती है, और एकाएक अपनी जीभ बाहर निकालती है और घास का एक पत्ता झपट लेती है। उसके बाद वह फिर इधर-उधर घूमती है, सूँघती है और घास की दूसरी कलंगी ले लेती है, और इसी भाँति वह चरती रहती है। क्या किसी ने इन अवस्थाओं में कभी किसी गाय को विषैली घास खाते हुए देखा है? परन्तु इस बेचारे जानवर को किसी बाड़े में बन्द कर दो, थोड़ी-सी घास इकट्ठी करके उसके सामने रख दो, और वह बेचारा जानवर जिसने अपनी सहज प्रवृत्ति खो दी है, क्योंकि अब वह मनुष्य का अनुसरण करता है (क्षमा करना), बाक़ी घासों के साथ-साथ विषैली घास को भी खा लेता है। ऐसी तीन घटनाएँ हम यहाँ देख चुके हैं, तीन गायें, जो विषैली घास खाने के कारण मर गयीं। और इन अभागे जानवरों में, अन्य जानवरों की तरह, मानव की श्रेष्ठता के प्रति एक प्रकार का आदर-भाव होता है (जिसे मैं असमर्थनीय कह सकती हूँ)—यदि वह (मनुष्य) गाय के सामने विषैली घास रख देता और उसे खाने को उससे कहता है तो वह उसे खा

लेती है! परन्तु तुम उसे स्वतन्त्र छोड़ दो, अर्थात्, प्रजाति की आत्मा और उसके बीच कोई चीज़ हस्तक्षेप न करे, तो वह ऐसा कभी नहीं करेगी। जो पशु मनुष्य के समीप रहते हैं वे सब अपनी सहज प्रेरणा खो देते हैं, क्योंकि उनमें इस जीव के प्रति एक प्रकार का भक्तिपूर्ण आदर-भाव होता है जो उन्हें बिना किसी कठिनाई के आश्रय और भोजन दे सकता है—और थोड़ा-सा भय भी होता है, क्योंकि वे जानते हैं कि मनुष्य जो कुछ चाहता है उसे वे यदि नहीं करेंगे तो वे पीटे जायेंगे!

यह बहुत विचित्र बात है, वे अपनी क्षमता खो बैठते हैं। कुत्तों को देखो, जैसे, जो गड़रिये का कुत्ता, भेड़ों के झुण्ड के साथ मनुष्यों से बहुत दूर रहता है और जिसका स्वभाव बहुत स्वतन्त्र होता है (वह कभी-कभी घर आता है और अपने मालिक को अच्छी तरह पहचानता है, पर बार-बार उससे मिलता नहीं), उसे यदि साँप काट लेता है तो वह एक कोने में बैठ जाता है, शरीर के उस स्थान को चाटता है और तब तक आवश्यक सभी बातें करता रहता है जब तक कि वह नीरोग नहीं हो जाता। परन्तु वही कुत्ता जब तुम्हारे साथ रहता है और उसे साँप काट लेता है तो वह चुपचाप मनुष्य की तरह मर जाता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २८१-८३

प्रजातिगत सहज बोध

उनमें एक ऐसा प्रजातिगत सहज बोध होता है जो बहुत अधिक सन्तुलित होता है और जो उनकी क्रियाओं को उनके हित की दृष्टि से व्यवस्थित करता है। और आप-से-आप, बिना जाने ही वे इस प्रजातिगत सहज बोध के अधीन रहते हैं जो उस प्रजाति की, प्रत्येक प्रजाति की दृष्टि से पूरी तरह युक्तिसंगत होता है। पर वे पशु जो किसी-न-किसी कारण से इससे बाहर आ जाते हैं—जैसा कि मैं अभी कुछ देर पहले उन पशुओं की बात कर रही थी जो मनुष्य के समीप रहते हैं और अपने प्रजातिगत सहज बोध की अपेक्षा मनुष्य की बात मानने लगते हैं—वे बिगड़ जाते हैं और अपने प्रजातीय गुणों को खो बैठते हैं। यदि पशु को उसकी अपनी स्वाभाविक अवस्थाओं में रहने दिया जाये और वह मनुष्य के प्रभाव से मुक्त हो तो वह अपनी दृष्टि से बहुत अधिक समझदार जीव होता है क्योंकि वह केवल

उन्हीं चीज़ों को करता है जो उसकी प्रकृति के और उसके हित के अनुरूप होती हैं। अवश्य ही, उसका अमंगलकारी दुर्घटनाओं से सामना होता है, क्योंकि दूसरी प्रजातियों के साथ उसका सतत युद्ध चलता है, परन्तु अपने-आपमें वह मूर्खतापूर्ण काम नहीं करता। मूर्खताओं का और विकृति का प्रारम्भ होता है सचेतन मन से और मनुष्यजाति से। यह मनुष्य का अपनी मानसिक क्षमता का दुरुपयोग है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ११२-१३

मध्यवर्ती प्रजाति

हाँ, शुरू के पशुओं और पौधों में फ़र्क करना कठिन है। उनमें चेतना नहीं के बराबर होती है। फिर तुम जानवरों की सभी जातियों को देखो। तुम उन्हें जानते हो, जानते हो न? उच्चतर पशु-जातियाँ, वास्तव में **बहुत** सचेतन होती हैं। उनकी अपनी बिलकुल स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति होती है। वे बहुत सचेतन और अद्‌भुत रूप से बुद्धिमान् होते हैं, जैसे, हाथी। तुम हाथी और उसकी अद्‌भुत बुद्धि की बहुत सारी कहानियाँ जानते हो। फलस्वरूप यहाँ मन काफ़ी स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। और इस क्रमिक विकास में से होते हुए हम अचानक उस प्रजाति पर जा पहुँचते हैं जो शायद ग़ायब हो गयी है—जिसके कुछ अवशेष मिले हैं—यह बन्दर के जैसी या उसी कुल की मध्यवर्ती प्रजाति रही होगी। भले वह ठीक बन्दर न हो जिसे हम जानते हैं, पर उसके जैसी प्रजाति—एक ऐसा पशु जो दो पैरों पर चलता था। और वहाँ से हम आदमी तक आ पहुँचते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २३७

सामञ्जस्य की इच्छा करना

सच्चे पशु ज़्यादा अच्छी हालत में हैं। वे आपस में ज़्यादा सामञ्जस्यपूर्ण हैं। वे मनुष्यों की तरह लड़ते-झगड़ते नहीं। वे अकड़फूँ नहीं करते, वे लोगों को नीचा समझ कर उन्हें दूर नहीं रखते।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ३००-०१

उसके अन्तर का आत्मतेज धरती की अवमानवीय सन्तानों को खींचता था;
और निज आत्मा के विशाल और मुक्तानन्द में
वह पशु और पक्षी और पुष्प एवं तरुवर के
विविध-रंगी उमंगपूर्ण भव्य जीवनों से जुड़ जाती थी।
वे उसे निज सरल हृदय से उत्तर देते।
मानव में एक धूमिल अशान्त कुछ रहता है;
जो जानता हुआ भी दिव्य प्रकाश से मुख मोड़ लेता है
वह पतन की अन्धी अविद्या का वरण करता है।

'सावित्री', पृ.३६६ **श्रीअरविन्द**

मनुष्य तथा पशु

सतत पहेली

कुछ समय पहले मैंने पशु-जीवन के साथ तादात्म्य का अनुभव किया था, और यह एक तथ्य है कि पशु हमें नहीं समझते; उनकी चेतना इस तरह की बनी है कि हम उनसे एकदम पूरी तरह बच निकलते हैं, यानी न हम उन्हें समझ पाते हैं न वे हमें। लेकिन फिर भी, पालतू पशु कुछ अलग होते हैं। मैं ऐसे घरेलू पशुओं को जानती थी—और बिल्लियों को, ख़ासकर बिल्लियों को, जिन्होंने हम मनुष्यों को समझने के लिए चेतना में प्रायः एक यौगिक प्रयास किया था। लेकिन सामान्य तौर पर, जब वे हमें क्रिया-कलाप करते, ज़िन्दगी जीते हुए देखते हैं, वे हमें समझ नहीं पाते, हम जैसे हैं वैसे वे हमें नहीं देखते और हमारी वजह से दुःख भोगते हैं। हम उनके लिए एक सतत पहेली बने रहते हैं। हमारी चेतना का केवल एक बहुत ही छोटा-सा हिस्सा उनके साथ जुड़ा रहता है। यही समान चीज़ हमारे साथ घटती है जब हम अतिमानसिक जगत् की ओर देखने की कोशिश करते हैं। केवल तभी जब चेतना की कड़ी जुड़ जायेगी हम उसे देख पायेंगे—और वह भी हमारी चेतना का जितना हिस्सा रूपान्तरित हो जायेगा बस वही उस जगत् को देखने में सक्षम होगा—अन्यथा दोनों जगत् उसी तरह अलग-अलग रहेंगे जितना अलग पशु और मानव-जगत् आज है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *३ फ़रवरी १९५८*

संक्रमण-अवस्था

अभी कुछ दिन हुए मैंने ध्यानपूर्वक देखा, मैंने एक ही प्रकार की घटनाओं को मनुष्यों और पशुओं के साथ होते देखा है और उनमें अन्तर देखा है। यदि तुम अपने-आपको पशुओं के साथ एक करके देखो तो तुम्हें भली-भाँति पता चल जायेगा कि वे ऐसी घटनाओं को दुःखपूर्ण नहीं मानते—उन पशुओं को छोड़ कर जो मनुष्य के सम्पर्क में आते हैं, किन्तु उनकी अवस्था स्वाभाविक नहीं होती, वह संक्रमण की अवस्था है। वे पशु और मनुष्य के बीच की संक्रमण-अवस्था के प्राणी हैं।... और स्वभावतया सबसे पहले वे मनुष्य के दोष ही अपनाते हैं, उन्हें अपनाना सदा सरल होता है! और

इस कारण वे बिना बात दुःखी होते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १७२-७३

विकार एक मानव रोग है

विकार एक मानव रोग है, पशुओं में यह बहुत ही विरल पाया जाता है, और वह भी केवल उन्हीं पशुओं में जो मनुष्य के ज़्यादा समीप आ गये हैं और इसी कारण उन्हें उनके विकार की छूत लग जाती है।

इस विषय में एक कहानी है। उत्तरी अफ़्रीका में—अल्जीरिया में—कुछ अफ़सरों ने एक बन्दर पाल रखा था। बन्दर उन्हीं के साथ रहता था। एक शाम को भोजन करते समय उन्हें एक भद्दा विचार आया और उन्होंने बन्दर को कुछ पीने को दिया, वह शराब थी। बन्दर ने पहले तो सबको पीते देखा, फिर उसे लगा, यह तो कुछ मज़ेदार चीज़ है, उसने एक गिलास पी लिया—शराब का एक पूरा गिलास। इसके बाद उसकी तबीयत ख़राब हुई, बेहद ख़राब। दर्द के मारे बेचारा मेज़ के नीचे लुढ़कता, छटपटाता रहा, सचमुच वह बहुत ही कष्ट पा रहा था, अर्थात् भौतिक प्रकृति पर, जो पहले से भ्रष्ट न हुई हो, शराब का सहज प्रभाव क्या होता है यह उसने अपने उदाहरण से दिखा दिया। वह इस विष-प्रयोग से मरते-मरते बचा। ख़ैर, वह चंगा हो गया। कुछ समय बाद उसे फिर खाने के लिए आने दिया गया, क्योंकि अब वह ठीक था। किसी अफ़सर ने फिर से उसके सामने शराब का गिलास रख दिया। भयंकर ग़ुस्से में उसने गिलास उठाया और देने वाले के सिर पर दे मारा... इस तरह उसने दिखा दिया कि वह मनुष्यों से ज़्यादा बुद्धिमान् है!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १११-१२

जानवरों में प्रेम

जानवरों में मनुष्यों के लिए कैसा प्रेम होता है?

यह लगभग वैसा ही होता है जैसा अबौद्धिक लोगों में भगवान् के लिए। यह सराहना, विश्वास और सुरक्षा की भावना से मिल कर बनता है। सराहना: यह तुम्हें सचमुच बहुत सुन्दर लगता है। और इसलिए कोई तर्क नहीं दिया जाता: हृदय से सराहना, कह सकते हैं, सहज। उदाहरण

के लिए, यह चीज़ कुत्तों में बहुत अधिक मात्रा में होती है। और फिर विश्वास—स्वभावतः इस चीज़ में कई बार और चीज़ें मिली होती हैं, कुछ आवश्यकता की और निर्भरता की भावना। क्योंकि जब मुझे भूख लगेगी तो यही व्यक्ति मुझे खाना देगा। जब मौसम ख़राब होगा तो यही मुझे आश्रय देगा, मेरी देखभाल करेगा। यह सबसे सुन्दर पक्ष नहीं है। और इसके बाद, यह दुर्भाग्यवश एक प्रकार के भय से मिल जाता है (मैं समझती हूँ—मैं इसे पूरी तरह मनुष्य का दोष मानती हूँ); निर्भरता की भावना और अपने से बहुत अधिक मज़बूत, बहुत अधिक सचेतन, बहुत अधिक... का डर, जो तुम्हें नुक़सान पहुँचा सकता है और तुम्हारे पास इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उससे अपनी रक्षा कर सको। यह बात दयनीय है, पर यह है पूरी तरह मनुष्य का दोष।

परन्तु यदि मनुष्य सचमुच पशुओं के प्रेम का अधिकारी हो तो वह प्रेम विस्मय और सुरक्षा के भावों से बना होगा। यह बहुत अच्छी चीज़ है, यह सुरक्षा का भाव, कोई ऐसी चीज़ जो तुम्हारी रक्षा कर सकती है, तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत हो वह तुम्हें दे सकती है और जिसके पास तुम हमेशा आश्रय पा सकते हो।

पशुओं में एकदम प्रारम्भिक मन होता है। मनुष्यों की तरह उन्हें निरन्तर विचार तंग नहीं किया करते। उदाहरण के लिए, तुम उनके साथ भलाई करो तो उन्हें सहज कृतज्ञता का अनुभव होता है, जब कि मनुष्य सौ में से अट्ठानवे बार यह सोचने लगते हैं कि इस तरह भलाई करने में व्यक्ति का क्या स्वार्थ हो सकता है। यह मानसिक ऊहापोह की बड़ी दुर्दशाओं में से एक है। पशु इससे मुक्त हैं, तुम उनके साथ भलाई करो तो वे सहज रूप में कृतज्ञ होते हैं। और उन्हें विश्वास होता है। तो उनका प्रेम इन चीज़ों से बना होता है और वह बहुत प्रबल आसक्ति का रूप ले लेता है, तुम्हारे निकट रहने की अदम्य आवश्यकता के रूप में।

कुछ और चीज़ भी है। अगर मालिक सचमुच अच्छा हो और जानवर वफ़ादार हो तो उनमें चैत्य और प्राणिक शक्तियों का आदान-प्रदान होता है जो जानवर के लिए एक अद्भुत चीज़ है और उसे बहुत तीव्र हर्ष प्राप्त होता है। जब वे इस तरह से तुम्हारे बहुत नज़दीक रहना चाहते हैं, जब तुम उन्हें पकड़ कर उठाते हो तो उनके अन्दर से वही स्पन्दन उठता है।

तुम उन्हें जो शक्ति देते हो—प्यार और दुलार का बल, संरक्षण आदि—उन्हें वे अनुभव करते हैं और इससे उनके अन्दर गहरा लगाव पैदा होता है। कुछ उच्चतर पशुओं में, जैसे कुत्ते, हाथी और घोड़े तक में, यह बहुत आसानी से निष्ठा की एक विलक्षण आवश्यकता को पैदा करता है (और वह मन के तमाम तर्क-वितर्कों और दलीलों के द्वारा विकृत नहीं होता)। वह बहुत सहज और अपने साररूप में बहुत शुद्ध होता है—बहुत ही सुन्दर।

मनुष्य के मन की क्रियाओं ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में, अपनी पहली अभिव्यक्ति में बहुत-सी चीज़ें बिगाड़ दी हैं जो पहले बहुत अच्छी थीं।

स्वभावतः, यदि मनुष्य ज़्यादा ऊँचे स्तर पर उठे और अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे तो चीज़ें ज़्यादा मूल्यवान् बन सकती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच एक मार्ग है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धि का बहुत ही अशोभनीय और निम्न कोटि का उपयोग करता है। वह उसे हिसाब-किताब का, दूसरों पर अधिकार जमाने का, छलने का यन्त्र बना लेता है और तब यह बहुत भद्दी चीज़ बन जाती है। मैंने अपने जीवन में ऐसे जानवरों को देखा है जिन्हें मैंने बहुत-से मनुष्यों से बहुत ऊँचा माना था, क्योंकि उनमें वह गन्दा हिसाब-किताब, औरों को धोखा देकर लाभ उठाने का भाव बिलकुल न था। कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो इस चीज़ को पकड़ लेते हैं—मनुष्यों के सम्पर्क के कारण पकड़ते हैं—लेकिन ऐसे भी हैं जिनमें यह चीज़ होती ही नहीं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६४-६६

माँ का प्रेम

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि ख़ूब बढ़ा-चढ़ा कर इस विषय पर बोलने के सिवा, यह प्रेम भी वैसा ही है जैसा उच्चतर पशुओं का, उदाहरणार्थ... चौपायों का अपने बच्चों के साथ होता है, यह बिलकुल वैसा ही है : वही प्रेमभाव, वही आत्म-विस्मृति, वही आत्म-त्याग, उन्हें शिक्षित करने की वही चिन्ता, वही धैर्य, सब कुछ वही...। मैंने कई बहुत आश्चर्यजनक बातें देखी हैं, और यदि ये सब लिखी जातीं और बिल्ली पर प्रयुक्त न करके स्त्री पर प्रयुक्त की जातीं तो कितने ही सुन्दर उपन्यास बन जाते, लोग कहते : "क्या व्यक्तित्व है यह! मातृप्रेम में ये स्त्रियाँ कितने अद्भुत रूप से समर्पित होती हैं!" ठीक ऐसा ही है। बस, बिल्लियाँ लम्बी-चौड़ी बातें नहीं कर सकतीं।

इतनी-सी बात है। न वे पुस्तकें लिख सकती हैं, न भाषण दे सकती हैं, भेद केवल इतना ही है। किन्तु मैंने बड़ी आश्चर्यजनक बातें देखी हैं। वही त्याग, वही आत्म-विस्मृति—ज्यों ही प्रेम का आरम्भ होता है, ये बातें आ जाती हैं। किन्तु मनुष्य... जो कुछ मैंने अध्ययन किया है उसके आधार पर मेरा निश्चित विश्वास है कि शायद पशुओं का प्रेम कुछ अधिक पवित्र होता है क्योंकि उनमें सोचने की क्षमता नहीं होती, जब कि मनुष्य अपनी मानसिक शक्ति, सोचने, तर्क करने, विश्लेषण करने, अध्ययन करने की क्षमता के साथ, यह सब, ओह! वे अत्यधिक सुन्दर भाव को भी नष्ट कर देते हैं। वे हिसाब लगाना, तर्क करना, शंका करना, आयोजन करना आरम्भ कर देते हैं। '**श्रीमातृवाणी**', खण्ड ६, पृ. १२१

मनुष्यों तथा पशुओं में ग्रहणशीलता

ऐसा लगता है कि रूपान्तर में सबसे अधिक प्रतिरोध सबसे ज़्यादा सचेतन सत्ताओं की मानसिक ग्रहणशीलता के अभाव के कारण आयेगा, स्वयं मन के कारण आयेगा, जो चीज़ों को अपने ही अज्ञानी तरीक़े से जारी रखना चाहता है (जैसा कि श्रीअरविन्द ने लिखा है)। तथाकथित जड़-भौतिक तत्त्व कहीं अधिक प्रत्युत्तरशील होता है, कहीं अधिक—वह प्रतिरोध नहीं करता। और मुझे विश्वास हो गया है कि पौधों में भी, या उदाहरण के लिए पशुओं में भी प्रत्युत्तर मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक जल्दी मिलेगा। बहुत ही व्यवस्थित मन और ऐसी सत्ताओं के ऊपर क्रिया करना ज़्यादा मुश्किल हो जायेगा जो पूरी तरह से निर्मित हो चुकी हैं, क्योंकि व्यवस्थित मानसिक चेतनावाले लोग अपने विचारों को पत्थर की लकीर की भाँति मानते हैं! उनका मन बहुत प्रतिरोध करता है। मेरे अनुभव के अनुसार, जो कुछ अचेतन है वह निस्सन्देह ज़्यादा आसानी से रूपान्तर की क्रिया का अनुसरण कर सकेगा। जैसे, नल से पानी को निकलते देखना, पानी का बोतल में जाना, गिलास में उँडेलना—इस सारी तरलता को देखना कितना सुखद होता है! दिखायी देता है कि वहाँ अहंकार नहीं है...

जैसे-जैसे सत्ता विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे अहंकार अधिकाधिक सचेतन, साथ ही अधिकाधिक बाधक भी बनता जाता है। बहुत ही आदिम, बहुत सरल सत्ताएँ, छोटे बच्चे ही पहले प्रत्युत्तर देंगे, क्योंकि उनमें अहंकार

व्यवस्थित और विकसित नहीं होता। लेकिन ये बड़े लोग! ऐसे लोग जिन्होंने अपने ऊपर काम किया है, जिन्होंने अपने ऊपर प्रभुत्व पा लिया है, जो व्यवस्थित हैं, जिनका अहंकार इस्पात का बन गया है, उनके लिए इस रूपान्तर को अपनाना मुश्किल होगा।

हाँ, अगर वे इस सबसे परे चले जायें और उनके अन्दर पर्याप्त आध्यात्मिक ज्ञान हो, वे अपने अहंकार को न्योछावर कर सकें... तो उस हालत में उनकी उपलब्धि कहीं अधिक महान् होगी—उसे सम्पन्न करने में अधिक कठिनाई होगी, लेकिन उसका परिणाम बहुत अधिक पूर्ण होगा।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *६ जून १९५८*

मनुष्य ने सब कुछ दूषित कर दिया है

मनुष्य की मानसिक चेतना ने ही सारी 'प्रकृति' को पाप तथा उसके साथ आये दुःख-दर्द के विचार से भर दिया है। हम जिस तरह नाख़ुश और उदास होते हैं उस तरह जानवर नहीं होते। बिलकुल नहीं, बिलकुल भी नहीं, सिवाय—जैसा कि श्रीअरविन्द ने कहा है—उनके जो दूषित हो गये हैं। वे जिनमें विकार पैदा हो गया है, मनुष्यों के साथ रहने वाले पशु हैं। कुत्तों में पाप और प्रायश्चित्त का भाव होता है, क्योंकि उनकी पूरी अभीप्सा ही होती है, मनुष्यों के जैसा दीखने की। उनके लिए मानव ही होता है भगवान्। इसलिए उनमें दुराव-छिपाव, छल-कपट होता है : कुत्ते झूठ बोलते हैं। और मनुष्य इसकी सराहना करते हैं। वे कहते हैं, "ओह! कितने चतुर, बुद्धिमान् हैं ये!"

उन्होंने अपना देवत्व खो दिया है।

सचमुच, आज मानवजाति ऊपर उठती हुई चक्राकार गति के उस बिन्दु पर है जो बहुत शोभन नहीं है।

लेकिन क्या कुत्ता बाघ से ज़्यादा विकसित या चक्राकार गति में उससे ऊपर नहीं है—यानी, भगवान् के अधिक निकट?

यह सचेतन होने का प्रश्न नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य बाघ से ज़्यादा विकसित है, लेकिन बाघ मनुष्य से ज़्यादा दिव्य है। तुम्हें चीज़ों में घालमेल नहीं करना चाहिये। ये दोनों एकदम से दो अलग-अलग चीज़ें हैं।

भगवान् हर जगह हैं, हर एक में हैं। हमें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये—एक पल के लिए भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये। वे सर्वत्र हैं, सभी चीज़ों में हैं; इसलिए हम कह सकते हैं कि सचमुच अचेतन लेकिन सहज रूप में, जो कुछ मानसिक अभिव्यक्ति के नीचे है, वह बिना मिश्रण के भगवान् है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह सब भगवान् इसलिए है क्योंकि सहज रूप में उसका अस्तित्व है और मन के नीचे सब कुछ प्रकृति के साथ सामञ्जस्य में जीता है। यह तो मनुष्य ही है जिसके मन ने अपराध-भाव को जन्म दिया है। हाँ, स्वभावतः वह कहीं ज़्यादा सचेतन भी है! इसमें तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, यह एक तथ्य है, हालाँकि हम जिसे चेतना कहते हैं (जिसे 'हम' यानी मनुष्य चेतना कहते हैं) वह तो चीज़ों को इन्द्रियगोचर बनाना या मानसिक रूप देना है। वह सच्ची चेतना नहीं है, उसे तो मनुष्यों ने चेतना का नाम दे दिया है। हाँ, मानव तरीक़े से, यह स्पष्ट है कि मनुष्य पशु से अधिक सचेतन है, लेकिन मनुष्य पाप और विकार का तत्त्व ले आता है और जिसे वह 'सचेतन' अवस्था कहता है उसके बाहर वह तत्त्व अस्तित्व ही नहीं रखता। वह सचमुच सचेतनता है ही नहीं, मात्र चीज़ों को मानसिक रूप देना और उन्हें इन्द्रियों के द्वारा देखना, सुनना, चखना, सूँघना और स्पर्श करना है।

यह ऊपर चढ़ता हुआ एक सर्पिल घुमाव है, लेकिन ऐसा घुमाव जो भगवान् से छिटक गया है। तो, स्वाभाविक है कि एक उच्चतर 'देवत्व' को पाने के लिए मनुष्य को कहीं अधिक ऊपर चढ़ना होगा, क्योंकि वह सचेतन 'देवत्व' की ओर उठना चाहता है, बाक़ी सब सहज और नैसर्गिक रूप से, यानी इसके बारे में अचेतन रहते हुए भगवान् है—यही है मनुष्य और उसके नीचे के स्तर के प्राणियों में फ़र्क। हम हैं सचेतन, लेकिन हमने शुभ और अशुभ की इतनी सारी नैतिक धारणाएँ बना रखी हैं और उसको सारे जगत् पर इतना फैला दिया है, इतना विकृत कर दिया है कि प्रश्न उठता है, क्या मानव सचमुच सचेतन है, सीढ़ी के उपरले डण्डे पर है? हमने ही पाप-पुण्य का आविष्कार किया है।

हम ही हैं पशु की शुद्धता और देवता की शुद्धता के बीच विकार पैदा करने वाले बिचौलिये!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *जुलाई १९५८*

मैं माँ हूँ

एक दिन 'प्लेग्राउण्ड' में माँ हमसे विभिन्न विषयों पर बातचीत कर रही थीं। उन्होंने हमसे कहा :

"मैं अक्सर शाम को गाड़ी से छोटी-मोटी सैरों के लिए जाया करती थी। पवित्र *(एक फ्रेंच शिष्य)* गाड़ी चलाया करता था और जब हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाते, वह गाड़ी रोक कर, दरवाज़ा खोल, बाहर चहलक़दमी करने लगता। ऐसे ही एक अवसर पर, मैं कार में ही बैठी हुई थी। बहुत शान्त और सुखद हवा बह रही थी और गाड़ी में बैठे-बैठे मैं बाहर के सुन्दर नज़ारे देख रही थी। अचानक कहीं से एक बड़ा-सा कोबरा गाड़ी के अन्दर घुस आया। अपना विशाल फण लहराता हुआ वह सीधा मेरी तरफ़ आया और मेरी गोदी के पास आ खड़ा हुआ। कुछ देर तक मैंने उसे देखा फिर उससे कहा :

'ठीक है, अब तुम जा सकते हो।'

फ़ौरन अपना फण झुका कर वह रेंगता हुआ बाहर निकल गया।"

मुझे माँ का इस तरह साँप के साथ खेलना बिलकुल न रुचा। मैं फूट पड़ी :

"माँ, आपको इस तरह साँप को प्रोत्साहन बिलकुल नहीं देना चाहिये था। आपको तुरन्त उसे मार डालना चाहिये था।"

माँ एकदम चौक गयीं, बोलीं :

"नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं कैसे मार देती उसे? मैं माँ हूँ।"

'Moments Eternal', पृ. २४८ , *प्रीति दास गुप्त*

पशुओं के साथ बरतावे

पूर्ण समचित्तता

मनुष्य में साँप और बिच्छू जैसे कुछ जन्तुओं से जो एक नैसर्गिक हटाव का भाव उत्पन्न होता है, उसका आधार क्या है?

यह अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति को इस प्रकार के या किसी अन्य प्रकार के हटाव अनुभव हों ही। किसी भी प्रकार की घृणा या हटाव का बिलकुल न होना योग की मूलभूत प्राप्तियों में से एक है।

जिस हटाव की बात तुम कह रहे हो वह भय के कारण होता है; यदि भय न हो तो इस प्रकार के हटाव का अस्तित्व ही नहीं रहता। यह भय तर्क-विवेचन पर आधारित नहीं होता, अपितु नैसर्गिक होता है; यह वैयक्तिक नहीं, जातिगत होता है; यह एक आम सुझाव है और सारी मानवजाति की चेतना में समाया हुआ है। कोई व्यक्ति जब मानव शरीर धारण करता है तो साथ-ही-साथ इस प्रकार के आम सुझावों, जातिगत विचारों, मानवजाति की अपनी भावनाओं, साहचर्यों आकर्षणों, विकर्षणों और भयों के एक समूह को भी स्वीकार करता है।

परन्तु एक दूसरे दृष्टिकोण से आकर्षण या विकर्षण के स्वभाव में कोई चीज़ बिलकुल व्यक्तिगत होती है; क्योंकि ये गतियाँ प्रत्येक मनुष्य में एक सरीखी नहीं होतीं और ये बहुत हद तक विभिन्न मनुष्यों की प्राणमय सत्ता के प्रकम्पन के स्वरूप पर निर्भर होती हैं। ऐसे लोग हैं जिन्हें साँप आदि जन्तुओं से किसी प्रकार का विकर्षण नहीं होता, इतना ही नहीं, उन्हें ये जन्तु अच्छे लगते हैं, उनमें इनके प्रति एक प्रकार का प्राणमय आकर्षण और पसन्दगी होती है।

संसार ऐसी चीज़ों से भरा है जो सुखकर या सुन्दर नहीं हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य इन चीज़ों से दिन-रात घृणा करता रहे। घृणा, जुगुप्सा और भय की समस्त भावनाओं पर, जो मानव मन को क्षुब्ध और दुर्बल करती हैं, विजय प्राप्त की जा सकती है। योगी को इन प्रतिक्रियाओं पर विजय प्राप्त करनी होगी, क्योंकि योग-मार्ग पर पहला क़दम रखते ही यह माँग की जाती है कि तुम सभी प्राणियों, वस्तुओं और

घटनाओं के सम्मुख पूर्ण समचित्तता रखो। तुम्हें सदा स्थिर, निर्लिप्त और अविचलित रहना चाहिये, इसी में योग का बल है। यदि तुम पूर्ण रूप से स्थिर और शान्त हो तो तुम्हारे सामने आने पर ख़तरनाक और ख़ूँखार पशु भी निरस्त्र हो जायेंगे।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड ३, पृ. ११३-१४

पशुओं पर प्रभुत्व पाना

तुम्हें शायद इस बात का कोई अंदाज़ नहीं होगा कि प्राणिक लोक की सत्ताओं की आँखों में निर्भयतापूर्वक ताकने-भर से कितना बड़ा, प्रायः जादू का-सा परिणाम निकलता है। इस पृथ्वी पर भी, तुम यदि प्राणिक शक्तियों के इन सब अवतारों के साथ, जिन्हें हम साधारण तौर पर जीव-जन्तु कहते हैं, इसी तरह व्यवहार करो तो तुम उन्हें आसानी से वश में कर सकते हो। अगर तुम्हारे सामने जीता-जागता बाघ आ जाये और तुम बिना काँपे उसकी आँखों में सीधे ताको तो वह तुरत तुम्हारे सामने से भाग खड़ा होगा। यदि तुम ज़रा भी भयभीत हुए बिना एक साँप की नज़रों में अपनी नज़र गड़ा दो तो वह तुम्हें डस नहीं सकेगा। परन्तु थरथराते पाँवों से नज़र गड़ाने से कोई लाभ न होगा। यह अत्यन्त आवश्यक है कि तुम्हारे शरीर में कहीं तनिक भी भय का कम्पन न हो। जब तुम उसकी नज़रों को अपनी नज़रों से क़ैद करो तो तुम्हें एकदम शान्त-स्थिर और एकाग्र होना चाहिये क्योंकि तुम्हें भीषण भय से भर देने के लिए वह अपना सिर हिलाता रहता है। पशुओं को मनुष्यों की आँखों में एक ज्योति दिखायी देती है और यदि कोई उस ज्योति को ठीक ढंग से उनके ऊपर प्रयुक्त करे तो वे उसे सह नहीं सकते। मनुष्य की दृष्टि में एक ऐसी शक्ति होती है जो उन्हें निःशक्त बना देती है बशर्ते कि वह दृष्टि ख़ूब स्थिर और निर्भय हो।

अतएव, संक्षेप में, दो बातें हमेशा याद रखो : कभी, किसी अवस्था में भी भयभीत मत होओ और सभी परिस्थितियों में अपनी शक्ति को सौगुना बनाने के लिए सच्ची सहायता को पुकारो।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड ३, पृ. १७८

जानवरों की अचञ्चलता

लेकिन मैं कहती हूँ, और जिन लोगों ने जानवरों का निरीक्षण किया है वे भी कहते हैं कि, उदाहरण के लिए, जो जानवर बहुत मज़बूत होते हैं, वे बड़े शान्त होते हैं। स्वभावतः, जब वे शिकार का पीछा करते हैं तो अपनी सारी ऊर्जा लगा देते हैं; परन्तु यह उग्रता या हिंसा नहीं, ऊर्जा है। लेकिन अगर तुमने कभी सिंह को ऐसी अवस्था में देखा है—जब उसे कुछ भी न करना हो, तब वह ज़रा भी नहीं चुलबुलाता। अगर वह बीमार हो तो वह बेचैन होता है। लेकिन अगर वह भला-चंगा हो, स्वस्थ हो, अगर उसे कुछ करना न हो तो वह हिलेगा भी नहीं, वह बिलकुल अचञ्चल होगा। वह एक सन्त जैसा दीखेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४२०-२१

मैं नहीं जानती कि तुम लोगों ने शेरों, बाघों, हाथियों जैसे जानवरों को ध्यानपूर्वक देखा है या नहीं, पर यह एक सत्य है कि जब वे सक्रिय नहीं होते तो वे सदा बड़े आराम से निश्चल होते हैं। चुपचाप बैठा हुआ और तुम्हारी ओर ताकता हुआ एक सिंह तुमसे हमेशा यह कहता हुआ प्रतीत होता है: "ओह! तुम कितने चञ्चल हो!" वह विज्ञता की एक शान्तिपूर्ण मुद्रा के साथ तुम्हारी ओर ताकता है! और उसका समस्त बल, शक्ति, भौतिक सामर्थ्य वहाँ संग्रहित, एकत्रित, केन्द्रीभूत रहते हैं—किसी हलचल की छाया के बिना—और जब हुक्म दिया जाये तब कर्म करने के लिए तैयार रहता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३९५

हमारे योग में, पशुओं के प्रति हमें कैसा मनोभाव अपनाना चाहिये?

सच्चा मनोभाव केवल तभी आ सकता है जब तुमने भागवत एकात्मता की चेतना को पा लिया हो; तब तक के लिए हमेशा यही अच्छा होता है कि पशुओं के साथ सम्मान, प्रेम और करुणा के साथ व्यवहार किया जाये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. १८४

... सिंह अपने राजत्व और शक्ति में, बाघ अपनी भव्यता और अदम्य ऊर्जा में, हिरण अपने लालित्य और फुर्ती में, स्वर्गिक पक्षी मयूर अपने राजसिक पंखों के साथ, पक्षिगण अपने कलरव और मधुर गानों के साथ वह समस्त पूर्णता रखते हैं जिसकी 'जीवन' रचना कर सकता है, चिन्तनशील मनुष्य इसमें श्रेष्ठतर कभी नहीं हो सकता; वह पशु-पक्षियों के स्वभावगत गुणों में हमेशा उनसे अवर ही ठहरता है, वह बस अपनी मानसिक क्षमता में, अपने विचारों, मनन-चिन्तन करने की अपनी शक्ति और रचना करने में पशुओं से ऊँचा होता है : लेकिन मात्र उसके विचार उसे सिंह और बाघ से बलवत्तर, हिरण से अधिक फुर्तीला या नर्तक मयूर से अधिक शानदार नहीं बनाते या सबसे अधिक सुन्दर स्त्री या पुरुष का सौन्दर्य पशुओं के लुभावने सौन्दर्य, उनके रूप और आकार की पूर्णता के सामने हमेशा बीस ही नहीं ठहरता!

CWSA खण्ड २७, पृ. ७२ **श्रीअरविन्द**

पुरुष के प्रति प्रेम, स्त्री के प्रति प्रेम, चीज़ों के प्रति प्रेम, अपने पड़ोसी के प्रति प्रेम, अपने देश के प्रति प्रेम, पशुओं के प्रति प्रेम, मनुष्यजाति के प्रति प्रेम आदि सभी उस भगवान् के प्रति प्रेम हैं जो इन सजीव प्रतिमाओं के अन्दर प्रतिबिम्बित होता है। अतः, हमें प्रेम करना और शक्तिशाली बनना, सब कुछ उपभोग करना, सबको सहायता देना और नित्य-निरन्तर प्रेम करते रहना है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ४०६-०७

BOX

एक हद तक मनुष्य कई पशुओं का समन्वय है, यह भी कहा जा सकता है कि कृमि से लेकर सर्प तक, गज से लेकर सिंह तक वह हर एक का समन्वय है; लेकिन यह भी सच है कि पशु के रूप में वह सचमुच अपूर्ण है!

CWSA खण्ड १२, पृ. २२९ श्रीअरविन्द

पशुओं के साथ माँ का अनोखा सम्बन्ध

बिग बॉय

मेरे पास एक बिल्ला था, नाम था बिग बॉय। ओह, कितना सुन्दर था वह! विशाल! लम्बी-घनी पूँछ—मानों साथ-साथ कोई चोगा चला आ रहा हो! वह सचमुच शानदार था! और चूँकि वहाँ हर तरह की बिल्लियाँ घूमा करती थीं, साथ ही एक बहुत ही ख़ूँखार बिल्ला भी वहाँ मँडराता रहता था, तो जब बिग बॉय छोटा था तो मुझे उसकी बड़ी चिन्ता लगी रहती थी; मैं उसे घर के अन्दर सोने की शिक्षा देने लगी (यह करना बिल्लियों के लिए आसान नहीं होता)। मैंने उसे रात को बाहर निकलने से मना कर दिया। तो वह अपनी रातें अन्दर ही बिताने लगा और जब मैं सुबह उठती तो वह भी जाग जाता और मेरे सामने आकर बैठ जाता। तब मैं कहती, "ठीक है बिग बॉय, तुम बाहर जा सकते हो," और वह खिड़की से छलाँग लगा कर बाहर भाग जाता—लेकिन मेरे कहने के पहले कभी नहीं जाता। यही वह बिल्ला था जिसे किसी ने ज़हर दे दिया था।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१२ अप्रैल १९६१*

ब्राउनी

बिग बॉय के पहले मैंने एक और बिल्ले को खोया था, उसे टायफ़ॉयड हो गया था जो बिल्लियों को हो जाता है। उसका नाम था ब्राउनी, कितना सुन्दर था वह, कितना बढ़िया, कितना अद्‌भुत था वह बिल्ला! यहाँ तक कि जब वह बीमारी से जूझ रहा था वह इधर-उधर कोई गन्दगी नहीं फैलाता था, उसके लिए हमने एक कोना निश्चित कर दिया था, वहाँ एक बक्सा रख दिया गया था, वहीं वह अपना नित्यकर्म किया करता था; जब उसे जाने की ज़रूरत होती, वह इतनी धीमी और दीन आवाज़ में मुझे पुकारता कि मैं उसे गोदी में लेकर उसके बक्से तक पहुँचा दूँ। वह कितना भला था, उसके अन्दर बच्चे से अधिक मनोहरता और विश्वास भरा था। जानवरों में एक विश्वास और भरोसा होता है जो मनुष्यों में नहीं होता (यहाँ तक कि अब बच्चों के मन भी बहुत सारे प्रश्नों और सन्देहों से भरे होते हैं) लेकिन उसके अन्दर एक तरह का पूजा-भाव, अहो-भाव था, जैसे ही मैं

उसे अपनी बाँहों में लेती—अगर वह मुस्कुरा सकता तो ज़रूर मुस्कुराता। जैसे ही मैं उसे उठाती, वह आनन्द-विभोर हो जाता।

ब्राउनी भी बहुत सुन्दर था, क्या रंग था उसका! एकदम सुनहरा, मैंने उसके जैसा कोई बिल्ला कभी नहीं देखा। उसे यहाँ सेवा-वृक्ष (Service tree) के नीचे दफ़नाया गया है। मैंने स्वयं इसकी जड़ों के नीचे उसे दफ़नाया था (आश्रम के मुख्य परिसर में समाधि के ऊपर छाया हुआ वृक्ष)। यहाँ पहले आम का एक पेड़ था जो मुरझा गया था। हमने उसे निकाल कर यहाँ इस वृक्ष का बीज बोया जो आज सुनहली छटा से लदा रहता है।

अगर तुम पशुओं के साथ अच्छा व्यवहार करना जानो तो ये कितने सुन्दर, कितने भले होते हैं।

जब मैं आश्रम के मुख्य भवन में रहने के लिए आयी तो मैंने कहा, "हम इस घर में किसी भी बिल्ली को अपने साथ नहीं ला सकते, नहीं, यह एकदम असम्भव है। तब तक बिग बॉय की मृत्यु हो चुकी थी, उस समय हमारे पास जितनी भी बिल्लियाँ थीं हमने एक के सिवाय सभी दे दीं। यह पहली माँ बिल्ली थी जो हमारे पास आयी थी। मैं इसे देना नहीं चाहती थी तो वह आश्रम के अहाते के ही एक घर में रहने लगी—वह बहुत बूढ़ी हो चली थी और उसके लिए हिलना-डुलना भी बड़ा भारी काम था—एक दिन मैंने देखा कि घिसटती हुई वह सामने की छत पर आ गयी जहाँ से मेरा कमरा दिखता था... वह वहाँ ऐसी जगह आकर बैठ गयी जहाँ से वह मुझे देख पा रही थी... वह तब तक वहीं बैठी रही जब तक उसके प्राण-पखेरु न उड़ गये। चुपचाप, शान्त, निश्चल, लगातार मुझे देखते हुए उसने प्राण त्यागे।"

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१२ अप्रैल १९६१*

किकि

मेरे पास एक बहुत सुन्दर छोटी-सी बिल्ली थी, पूरी तरह शिष्ट और अद्‌भुत बिल्ली। वह घर में ही पैदा हुई थी और अन्य बिल्लियों के जैसी ही उसकी आदत थी, अर्थात्, यदि कोई चीज़ चलती नज़र आती तो उसके साथ वह खेलने लगती। एक दिन घर में एक बड़ा-सा बिच्छू निकल आया; जैसा कि उसका अभ्यास था, उस बिल्ली ने बिच्छू के साथ खेलना आरम्भ

कर दिया। और बस बिच्छू ने उसे डंक मार दिया। परन्तु वह एक असामान्य बिल्ली थी; वह मेरे पास आयी, वह लगभग मरी जा रही थी, परन्तु उसने मुझे अपना पञ्जा दिखाया जहाँ बिच्छू ने डंक मारा था,—वह स्थान फूल गया था और बड़ी भयंकर स्थिति में था। मैंने अपनी नन्हीं बिल्ली को उठा लिया—वह वास्तव में बड़ी प्यारी थी—और उसे एक मेज़ पर बिठा कर श्रीअरविन्द को बुलाया। मैंने उनसे कहा, "किकि को एक बिच्छू ने डंक मार दिया है, इसका दर्द दूर होना चाहिये।" बिल्ली ने अपनी गर्दन बढ़ा दी और श्रीअरविन्द की ओर देखा, उसकी आँखें अब तक थोड़ी पथरा गयी थीं। श्रीअरविन्द उसके सामने बैठ गये और उन्होंने भी उसकी ओर देखा। तब हमने देखा कि वह नन्हीं बिल्ली धीरे-धीरे अच्छी होने लगी, चंगी होने लगी, और एक घण्टे बाद मेज़ पर से कूद गयी और पूरी तरह स्वस्थ होकर चली गयी...। उन दिनों जिस कमरे में श्रीअरविन्द सोया करते थे (जहाँ अब 'अ' रहते हैं), मैं ध्यान का एक कार्यक्रम चलाया करती थी और प्रतिदिन आने वाले लोग ही नियमित रूप से आते थे; प्रत्येक चीज़ व्यवस्थित थी। परन्तु वहाँ हत्थोंवाली एक कुर्सी थी जिसमें यही बिल्ली रोज़ पहले से जाकर बैठ जाती थी—वह प्रतीक्षा नहीं करती थी कि कोई आये और उस कुर्सी पर बैठे, स्वयं सबसे पहले आकर बैठ जाती थी! और नियमित रूप से वह समाधि में डूब जाती थी! वह सोती नहीं थी, सोते समय बिल्लियाँ जिस ढंग से बैठती हैं उस ढंग से वह नहीं बैठती थी; वह समाधि में चली जाती थी, कभी-कभी वह चौंक पड़ती थी, उसे अवश्य ही सूक्ष्म-दर्शन हुआ करते थे। और वह धीमी आवाज़ निकालती थी। वह बड़ी गहरी समाधि में चली जाती थी। वह इस तरह घण्टों बनी रहती थी और जब वह उस स्थिति से बाहर आती थी तो खाना अस्वीकार कर देती थी। उसे जगा कर खाना दिया जाता था पर वह इन्कार कर देती थी; वह फिर से अपनी कुर्सी पर जा बैठती थी और समाधि में डूब जाती थी! यह बात उस छोटी-सी बिल्ली के लिए बहुत ख़तरनाक बनती जा रही थी...। परन्तु वह कोई सामान्य बिल्ली नहीं थी।

पशुओं के साथ परीक्षण

अब अपनी कहानी समाप्त करते हुए कह दूँ कि यदि तुम किसी पशु

को उसकी स्वाभाविक स्थिति में, मनुष्यों से दूर, छोड़ दो तो वह अपनी प्रजाति की आत्मा का अनुसरण करता है, उसे बहुत सुनिश्चित सहज प्रेरणा प्राप्त होती है और वह कभी कोई मूर्खता नहीं करता। परन्तु यदि तुम उसे लेकर अपने पास रखो तो वह अपनी सहज प्रेरणा खो देता है, और तब तुम्हें ही उसकी देख-रेख करनी चाहिये, क्योंकि अब उसे मालूम नहीं होता कि क्या करना चाहिये, क्या नहीं। परीक्षण करने की दृष्टि से मुझे बिल्लियों में दिलचस्पी थी, मैं एक प्रकार के विलोम जन्मान्तर का, यदि उसे यह नाम दिया जा सके, परीक्षण करना चाहती थी, अर्थात् यह देखना चाहती थी कि क्या पशु-रूप में उनका यह अन्तिम जन्म हो सकता है या नहीं, उन्हें अपने अगले जन्म में मनुष्य-शरीर में प्रवेश करने के लिए तैयार किया जा सकता है या नहीं। यह परीक्षण पूर्ण रूप से सफल रहा, मुझे तीन बिलकुल सुस्पष्ट उदाहरण प्राप्त हुए; उन्होंने जब शरीर छोड़ा तो उनका चैत्य पुरुष मानव शरीर में प्रवेश करने के लिए पर्याप्त सचेतन हो चुका था। परन्तु साधारण तौर पर मनुष्य ऐसा नहीं करते; सामान्यतया वे पशुओं की चेतना को अथवा यों कहें उनकी सहज प्रेरणा को बिगाड़ देते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २८३-८४

पशुओं में आत्म-त्याग

पशुओं में वह (त्याग) प्रायः ही मनुष्यों से ज़्यादा शुद्ध होता है। जानवरों के अपने बच्चों के लिए अनुराग, देखभाल, आत्म-विस्मरण के ऐसे-ऐसे उदाहरण हैं जो एकदम विलक्षण हैं। वहाँ यह सहज होता है, सोची-विचारी योजना के अनुसार नहीं, जानवर इस बारे में सोचता नहीं कि वह क्या कर रहा है। मनुष्य सोचता है। कभी-कभी (कभी-कभी—अधिकतर) यह सोचना क्रिया को बिगाड़ देता है, कभी-कभी यह उसे उच्चतर मूल्य प्रदान करता है, पर यह विरल है। मनुष्य की गतिविधि में पशु की अपेक्षा कम सहजता होती है।

मेरे पास एक बिल्ली थी। पहली बार जब उसने बच्चे दिये तो वह उस जगह से हिलना तक न चाहती थी। न उसने खाना खाया, न प्रकृति की कोई माँग पूरी की। वह वहीं डटी रही, बच्चों के साथ लगी रही, उनकी रक्षा करती रही, उनका पोषण करती रही। उसे भय था कि उन्हें कुछ हो

न जाये। और यह सोची गयी योजना के अनुसार नहीं था, सहज था। वह हिलती तक न थी। उसे इतना डर था कि उसके बच्चों को कहीं कुछ हो न जाये—केवल सहज बोध का परिणाम था यह। और फिर, जब वे बड़े हो गये तो उसने उन्हें सिखाने में जो कष्ट उठाया वह अद्‌भुत था। और क्या धैर्य था! और उसने उन्हें अपना आहार पकड़ने के लिए एक दीवार से दूसरी दीवार पर कूदना कैसे सिखाया, कैसे, कितनी सावधानी से, उसने एक बार, दस बार और जरूरत पड़ने पर सैकड़ों बार एक ही चीज़ दोहरायी। जब तक छोटा बच्चा, जो वह सिखाना चाहती थी, सीख नहीं गया तब तक वह थकी नहीं। एक असाधारण शिक्षा! उसने उन्हें दीवारों की मुँडेर पर चलना, बिना गिरे चलना सिखाया और यह बताया कि जब एक दीवार से दूसरी दीवार के बीच अन्तर बहुत हो तो उसे पार करने के लिए क्या करना चाहिये। छोटे बच्चों ने जब वह अन्तर देखा तो वे काफ़ी घबरा गये और उन्होंने डर के मारे कूदने से इन्कार कर दिया (वह उनके लिए अधिक दूरी न थी, पर अन्तर तो था ही और उनकी हिम्मत न हो रही थी), तब माँ कूद गयी। वह दूसरी ओर चली गयी। उसने उन्हें बुलाया : “आओ, चले आओ।” वे हिले तक नहीं, वे काँप रहे थे। वह लौट आयी और उन्हें एक भाषण दे डाला, उसने उन्हें अपने पंजे से हल्के चपत लगाये और उन्हें चाटा। लेकिन वे फिर भी न हिले। वह फिर कूदी। मैं आधे घण्टे से भी ज़्यादा उसे ऐसे करते हुए देखती रही। आधे घण्टे के बाद उसने देखा कि उन्होंने काफ़ी कुछ सीख लिया था। उसमें जो सबसे अधिक तैयार और सबसे योग्य लगता था, वह उसके पीछे गयी और उसे अपने सिर से जोर का धक्का दिया। तब वह बिलौटा सहज बोध के साथ कूद गया। वह एक बार कूद चुका तो बार-बार, बार-बार कूदता गया...।

कम ही माँएँ ऐसी होंगी जिनमें यह धीरज हो।

‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ४, पृ. २६८-८९

ठोथ—ओरंग-उटान

(‘त्र’, एक शिष्या ने श्रीमाँ से अनुमति माँगी कि “शिक्षा-विषयक कार्य के लिए” क्या वह एक ओरंग-उटान को अपने साथ रख सकती है।)

जब 'त्र' पहला बन्दर लायी थी तभी कइयों ने अपना विरोध प्रकट किया था, और अब अगर ओरंग-उटान आ जाये तो वे सब शिकायत करने मेरे पास पहुँच जायेंगे!... स्वाभाविक है कि नौकर-चाकर भयभीत थे, यहाँ तक कि अड़ोसी-पड़ोसी भी, बहरहाल उन्हें उसका आना कतई न भाया। एक बार ठोथ सोने के कमरे में चला आया, नौकरानी चीखने-चिल्लाने लगी, पड़ोसी भी आ पहुँचा (सौभाग्यवश उसने बुद्धि से काम लिया), वह शान्त रहा, बस, शायद कुछ कठोरता के साथ उसने उसे कुछ देर तक घूरा। उसके बाद ठोथ शान्त भाव से, बिना कुछ किये बाहर चला गया। लेकिन कभी-कभी जब ठोथ बिगड़ जाता है तो चादरों की चिन्दियाँ उड़ा देता है, तोड़-फोड़ करता है। इस घटना के बाद पड़ोसी मेरे पास आया, उसने सारी बात बतायी (यह मैं काफ़ी समय पहले की बात बता रही हूँ)। मैंने उससे कहा, "क्या तुम जानवरों के बारे में पहली चीज़ नहीं जानते! यह बहुत अच्छी बात है कि तुम शान्त स्वभाव के हो, जानते हो, जानवर तुम्हारी भावनाओं और विचारों के बारे में बहुत संवेदनशील होते हैं: अगर तुम भयभीत हो तो वे तुरन्त भयभीत हो जाते हैं; अगर तुम क्रुद्ध हो तो वे फ़ौरन क्रुद्ध हो उठते हैं; और अगर तुम सौम्य, दयालु, भद्र हो तो वे भी सौम्य, दयालु और भद्र बन जाते हैं।" वह मेरी बात एकदम समझ गया और तब से वहाँ सब कुछ ठीक चल रहा है। लेकिन वहाँ वह अकेला पड़ोसी नहीं है... एक ओरंग-उटान का होना, यह अपने-आप में बड़ी बात है, है न!

लेकिन यह ठोथ बड़ा ही विलक्षण है। क्या मैंने तुम्हें बतलाया कि जब मैंने उसे पहली बार देखा तो क्या घटा? (और मैंने 'त्र' से पूछा भी था कि क्या उसने उसे वह सिखाया था जो ठोथ ने किया, लेकिन 'त्र' ने मुझे बताया कि मेरे पास लाने के पहले उसने अपने पालतू ओरंग-उटान को न कुछ सिखलाया न बतलाया) वह उसे मेरे पास लायी, और मुझे देखते ही (वह 'त्र' की बाँहों में था), उसने अपने हाथ जोड़ लिये! और फिर उसने मुझे एक भाषण दिया: उसके होंठ बुदबुदा रहे थे, हाँ कोई ध्वनि नहीं थी, लेकिन उसका मुँह चल रहा था और कितना हाव-भाव था उसके चेहरे पर... मैंने उसको बधाई दी और वह लपक कर मेरे घुटनों पर आ बैठा, मेरी बाँहों में दुबक गया और... ध्यान की-सी अवस्था

में चला गया—हलचल बिलकुल बन्द हो गयी, वह वैसे ही अचल रहा। कम-से-कम पाँच मिनट तक वह वैसे ही बैठा रहा। पाँच मिनट के बाद मैंने सोचा, "यह इसी तरह सारे समय यहाँ नहीं रह सकता, इसे अब जाना होगा!"—तब उसने अपनी आँखें खोलीं और मेरी गोदी से उतर गया!... उसकी ग्रहणशीलता मनुष्यों से कहीं ज़्यादा विलक्षण थी। फिर उसने चारों ओर देखा, खिड़की से बाहर देखा, हाँ, वह उस स्थान में रस ले रहा था। फिर से उसने मेरी तरफ़ देखा, दोबारा मेरे घुटनों पर आकर, उसने अपना सिर मेरे कन्धे पर टिका दिया।...

बहुत बाद में, क़रीब एक साल बाद मैंने 'त्र' से पूछा कि क्या इस तरह हाथ जोड़ कर अभिवादन करने की उसकी आदत थी; उसने कहा, "उसने ऐसा कभी नहीं किया, केवल आप ही के सामने उसने हाथ जोड़े।" स्पष्टतः यह एक विशेष संवेदनशीलता थी। जानते हो, वह था पूर्ण विश्वास का चिह्न, वह विश्वास, वह भरोसा मेरी बाँहों में समा गया था।

अब वह बहुत लम्बा हो गया है, जवान हो गया है, और उसके दाँत... तेंदुए-जैसे दाँत निकल आये हैं उसके! लेकिन वह मेमने की तरह भद्र है। लेकिन आख़िर, डील-डौल में तो है ओरंग-उटान ही...

अब 'त्र' चाहती है कि *न्यू कैलीडोनिया* से 'म' एक ओरंग-उटान ले आये ताकि इसे एक दोस्त मिल जाये। ज़रा कल्पना करो, 'म' एक ओरंग-उटान का हाथ पकड़े चल रहा है!... वाह, बड़ा आकर्षक दृश्य होगा वह! *(श्रीमाँ हँसती हैं)*... और अगर वह उसे मेरे कमरे में ले आये!

लेकिन जानवरों में एक बहुत ही आकर्षण, बहुत ही मनोहरता होती है। मैं कहूँगी कि हम लोगों का उनके साथ बहुत अच्छा सम्बन्ध है। मानव चेतना के मानसिक क्रिया-कलाप द्वारा आयी समस्त विकृति इनमें नहीं होती (सिवाय उनके जो मनुष्यों के साथ जी रहे हों), लेकिन वे जो सीधे बाहर से आते हैं, उनमें ऐसी सरलता, एक तरह की ऐसी निष्कपटता होती है जो मन को मोह लेती है। और जानते हो, उनमें होती है ऐसी अलौकिक ग्रहणशीलता जो मनुष्यों की ग्रहणशीलता से भी ज़्यादा सहज-सरल होती है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१३ मई १९६७*

वे सचमुच सुनते हैं...

पैरिस में "पौधों का बग़ीचा" नामक एक बग़ीचा है जहाँ पौधों के साथ-साथ पशु भी रखे जाते हैं। अभी-अभी एक बड़ा शानदार सिंह बग़ीचे-वालों को मिला था। निस्सन्देह उसे एक पिंजड़े में रखा गया था। और वह क्रोध से भरा रहता था। उस पिंजड़े में एक दरवाज़ा था जिसके पीछे वह छिप सकता था और वह ठीक उस समय वहाँ छिप जाता था जब दर्शक उसे देखने के लिए आते थे। मैंने इसे लक्ष्य किया और एक दिन मैं पिंजड़े के पास चली गयी और उससे बोलने लगी (पशु बातचीत के प्रति बड़े संवेदनशील होते हैं, वे वास्तव में सुनते हैं)। मैंने शेर से बड़ी मीठी भाषा में बोलना शुरू किया, मैंने कहा, "ओह! तुम कितने सुन्दर हो, कितने दुःख की बात है कि तुम इस तरह अपने को छिपा रहे हो, हम लोग तुम्हें कितना देखना चाहते हैं...।" हाँ, तो उसने सुना। फिर, धीरे-धीरे उसने मेरी ओर कनखियों से ताका, फिर उसने मुझे अच्छी तरह देखने के लिए अपनी गर्दन बढ़ा दी; उसके बाद उसने अपना पंजा बाहर निकाला और अन्त में उसने अपनी नाक की नोक छड़ से लगा दी, मानों कह रहा हो, "आख़िर, एक व्यक्ति तो है जो मुझे समझता है!"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३६

फणदार कोबरा

तेओं की भूमि में जैतून के सैकड़ों साल पुराने पेड़ थे। मैं रोज़ दोपहर को उनमें से एक के नीचे बैठ कर ध्यान किया करती थी। हाँ, दोपहर को सख़्त गरमी होती थी, लेकिन गरमी ने कभी मुझे परेशान नहीं किया। इसके विपरीत, गरमी मुझे सुहाती थी। एक दिन, जब मैं गहरे ध्यान में लीन थी, मैं कुछ परेशानी सी महसूस करने लगी। तो मैंने अपनी आँखें खोलीं। और क्या देखती हूँ मैं? मेरे सामने क़रीब दो मीटर की दूरी पर इधर से उधर अपना फण हिलाता हुआ एक साँप एकदम सीधा तन कर खड़ा था। वह नजा साँप था, मुझे देखता हुआ वह बड़े ग़ुस्से से फुफकार रहा था। तुम जानते हो 'नजा' जाति के साँप को? वे नाग की भाँति होते हैं—फणदार कोबरा की भाँति, और बहुत ज़हरीले होते हैं! उनका विष मारक होता है। तो वहाँ खड़ा था वह नजा, अपना फण नचाते हुए और अपनी पूरी

शक्ति के साथ फुफकराते हुए। पहले तो मैं समझी ही नहीं कि वह इतना नाराज़ हो क्यों हो रहा है। फिर मुझे याद आया कि मैं जहाँ बैठी थी, ठीक उसके पीछे एक बिल था। 'मैं ज़रूर इसे इसके बिल में जाने से रोक रही हूँ,' मैंने अनुमान लगाया। 'लेकिन अब करूँ तो क्या करूँ?' मैं धर्मसंकट में पड़ गयी, 'मुझे डसने के लिए मेरी ज़रा-सी हरकत ही इसके लिए काफ़ी है'। तभी तेओं की सीख मेरे मस्तिष्क में कौंध गयी। मैं भयभीत नहीं हुई। मैं एकदम अचल बैठी रही, उसकी आँखों में आँखें डाल, मैं उसे एकटक घूरने लगी और अपनी यथाशक्ति मैंने उस पर लगा दी। क्रमशः फुफकारना कम होते-होते बिलकुल बन्द हो गया। कुछ समय बाद, धीरे से, बड़ी आहिस्ता से मैंने अपने पैर समेटे, पहले एक फिर दूसरा। लेकिन सारे समय मैं अपनी पूरी शक्ति के साथ उस पर टकटकी बाँधे हुए थी। आख़िरकार उस ज़हरीले साँप ने अचानक अपना फण नीचे किया, जल्दी से मुड़ कर वह पास के जलाशय में कूद गया।

सर्पराज

हम शायद यह कह सकते हैं कि सभी जानवरों में सम्मोहन या आकर्षक-शक्ति के प्रति साँप ही सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं। अगर वह तुम्हारे अन्दर हो (सम्मोहक शक्ति सबसे अधिक भौतिक-प्राण से आती है) तो तुम आसानी से साँपों को वशीभूत कर सकते हो; उन सभी के अन्दर यह शक्ति होती है जिन्हें साँप पसन्द हैं और जब वे उसका उपयोग करते हैं तो साँप उनके आज्ञाकारी बन जाते हैं... तेमसेम में कोबरा का सामना होने पर मैंने इसी का प्रयोग किया था—क्या तुम इसकी कहानी जानते हो? तेओं ने मुझसे इस शक्ति के बारे में बतलाया था और मैं अपने अन्दर इसके बारे में सचेतन थी, इसलिए मैं कोबरा से आज्ञापालन करवा सकी और वह चला गया। बाद में (मैंने यह कहानी भी तुम लोगों को सुनायी है), एक बार सर्पराज मुझसे मिलने आये थे—मेरा मतलब है, सर्पजाति की आत्मा। वे इस घटना के बाद तेमसेम में मुझे मिले थे और एक बार और भी आये थे जब मैंने एक बिल्ले को एक विषैले छोटे साँप (ऐस्प) पर हावी होने से रोका था। (वहाँ ये बहुत ख़तरनाक साँप पाये जाते हैं)—वह एक बहुत बड़ा गेरुए रंग का एंगोरा बिल्ला था। पहले उसने

साँप के साथ खेलना शुरू किया, लेकिन स्वाभाविक है कि धीरे-धीरे साँप क्रुद्ध होने लगा। ऐस्प ने बिल्ले पर प्रहार किया, लेकिन वह इतनी फुर्ती से एक तरफ़ हो लिया कि साँप उसे पा न सका (यह तमाशा दस मिनट से ज़्यादा समय तक चलता रहा, यह खेल सचमुच अद्‌भुत था)। जैसे ही साँप उस पर झपटता, बिल्ला अपने पंजे फैला कर उस पर खरोंच मारता, और वह हर बार आहत होता, तो धीरे-धीरे वह छोटा, विषैला साँप कमज़ोर पड़ने लगा और अन्त में... मैंने उस बिल्ले को उस साँप को खाने से रोका—सचमुच यह अन्तिम हिस्सा बीभत्स था!

इन दो घटनाओं के बाद, एक रात, सर्पराज मेरे सम्मुख आये। उनके सिर का किरीट सचमुच अद्‌भुत था—निस्सन्देह वह प्रतीकात्मक था, बहरहाल, वे सर्प-जाति की आत्मा थे। उनका रूप-रंग कोबरा की भाँति था और वे अद्‌भुत थे! एक विलक्षण सर्प और... सम्मोहक! उसने आकर मुझसे कहा कि मैं आपके साथ एक सन्धि करने आया हूँ: मैंने सर्पजाति पर अपना प्रभुत्व दिखलाया था, इसलिए वह मेरे साथ एक समझौता करने आया था। 'ठीक है', मैंने कहा, 'लेकिन तुम्हारा प्रस्ताव क्या है?' उसने कहा, 'मैं न केवल आपसे यह वादा कर रहा हूँ कि साँप आपको कभी हानि नहीं पहुँचायेंगे, बल्कि यह भी कि वे आपकी आज्ञापालन भी करेंगे। लेकिन इसके बदले में आपको भी मुझसे एक वादा करना होगा: कभी किसी साँप को जान से मत मारियेगा।' थोड़ा सोच-विचार कर मैंने कहा, 'नहीं, मैं यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकती, क्योंकि अगर कभी तुममें से कोई मेरे किसी पर (मुझ पर आश्रित किसी सत्ता पर) प्रहार करे तो मेरा समझौता तुमसे उसकी रक्षा करने से मुझे रोक नहीं सकता। मैं तुम्हें इसका विश्वास दिला सकती हूँ कि मेरे अन्दर कोई दुर्भावना या मारने की कोई मंशा नहीं है—मार डालना मेरी योजना में कदापि नहीं है! लेकिन मैं यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकती, क्योंकि इससे निर्णय लेने की मेरी स्वाधीनता पर रोक लग जायेगी।'

वह बिना कुछ जवाब दिये चला गया, तो स्थिति जस की तस रही।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *४ फ़रवरी १९६१*

आश्रम के पशुओं की कहानियाँ

कोई भी नहीं छूटा

आश्रम श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की प्रयोगशाला है। छोटे-बड़े सभी प्राणी उसका हिस्सा हैं। हाँ, केवल मानव प्राणी ही नहीं। बिल्लियाँ और कुत्ते, गाय और बैल, ब्लैकी कौआ, रिचर्ड का गर्दभ—कोई भी नहीं छूटा!

दिलीप कुमार रॉय की पुस्तक से उद्धृत

प्यूमा

... श्रीमाँ कुत्ते और बिल्लियों और आश्रम के बैलों में बहुत रस लेती थीं, एक बार उदार एक छोटा-सा गधा ले आये थे, माँ को बड़ा मज़ा आया, वैसे वे कई दूसरे जानवरों के बारे में भी बहुत जानकारी रखती थीं और कई पशु उनके सम्पर्क में भी आये थे। उन्होंने हमें ऐसे घोड़ों और ऐसे पक्षियों की कहानियाँ भी सुनायी हैं जिनके अन्दर मानव बनने की अभीप्सा थी—श्रीमाँ कुछ ऐसे कुत्तों और बिल्लियों से भी परिचित थीं जिन्हें मनुष्य बनना था। लेकिन शायद जिस पशु को वे सबसे ज़्यादा मोहक मानती थीं वह था प्यूमा। मुझे याद है, एक बार वे 'प्रॉस्पेरिटी' के कमरे में प्यूमा के बारे में हमें बता रही थीं; कैसी सराहना-भरी मुस्कान थी उनके चेहरे पर। उन्होंने कहा कि प्यूमा का मनुष्यों के प्रति सहज आकर्षण होता है और वे उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना सकते हैं। निस्सन्देह, कुत्तों का तो मनुष्यों के साथ गहरा लगाव और आकर्षण होता ही है, लेकिन वे तो सदियों से पालतू पशु रहे हैं, जब कि प्यूमा जंगल का वासी है... श्रीमाँ ने हमसे कहा था कि बिल्ली की जाति का यह प्राणी अमरीका में बहुतायत में पाया जाता है, और इसे कभी-कभी अमरीकन शेर भी कहा जाता है। यह हिरण तक का शिकार कर लेता है, लेकिन मनुष्यों पर इतनी जल्दी हमला नहीं करता...।

श्रीअरविन्द और मोर

श्रीअरविन्द का भी पशुओं के साथ लगाव था। श्रीमाँ की बिल्लियों के साथ उनका भी सम्पर्क था। एक बार पुराणी ने देखा कि वे माँ की एक

बिल्ली के लिए तश्तरी में मछलियाँ सजाने में लीन थे। हमने यह भी सुना था कि अगर कोई बिल्ली उनकी कुर्सी पर आकर बैठ जाती तो वे कभी किसी को उसे हटाने की अनुमति नहीं देते थे। एक कुत्ता भी उनके कमरे में आकर उनके अँगूठे चाटता था। जब बिग बॉय बिल्ला मृत्यु-शैया पर था, श्रीअरविन्द अपने कमरे से उतर कर नीचे आये और काफ़ी समय तक उसे सहलाते रहे। वैसे बहुत कम ही लोगों को पता होगा कि माँ के साहचर्य के पहले उनका पशुओं के साथ कोई सम्पर्क था भी या नहीं। कुछ घटनाओं से स्पष्ट पता लगता है कि उनका सम्बन्ध था। जब मैं उनकी कृतियों की 'प्रूफ़ रीडिंग' कर रहा था तो उनके प्रारम्भिक लेखों में से मैंने एक में पढ़ा कि कालिदास के किसी महाकाव्य की व्याख्या करते हुए किसी टीकाकार ने कहा था कि मोर ऐसा पक्षी है जो अपने परिवेश, अपने पालने वाले से आसक्त नहीं होता। श्रीअरविन्द ने उसकी इस व्याख्या का खण्डन करते हुए कहा था : "मैंने स्वयं मोर पाले हैं और मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि किसी भी अन्य प्राणी के जितनी आसक्ति मोरों में होती है।"

श्रीअरविन्द ने मोर पाले थे—यह तो सचमुच हम सबके लिए एक रहस्योद्‌घाटन था!

'Light and Delight' *पुस्तक से* *के.डी.सेठना*

गोल्डी

श्रीअरविन्द की अनुकम्पा उनकी चेतना के जितनी असीम थी। आश्रम के कुत्ते और बिल्लियाँ तक उसके भागीदार थे। किसी साधिका के अनुरोध पर एक पिल्ला भेंट-स्वरूप लाया गया जिसे माँ ने नाम दिया "गोल्डी"। जब वह बड़ा हो गया तो वह साधिका के बग़ीचे के फूलों से भरी एक डलिया रोज़ अपने मुँह में दबाये माँ के कमरे में आता और लौटते समय श्रीअरविन्द का लाड़-दुलार पाने के लिए उनके कमरे में चला जाता। कई बार वह उनके बिस्तर के नीचे लेट भी जाया करता था।

'Life in Sri Aurobindo Ashram' *पुस्तक से* *नारायण प्रसाद 'बिन्दु'*

गर्दभ बोदे

१९४५ या ४६ में किसी समय उदार भगवान् जाने कहाँ से एक गधे के साथ प्रकट हो गये! क्रिस्मस के दिन उन्होंने उसे सजाया, उसके सिर पर त्रिकोण के आकार की एक टोपी लगायी और माँ के सामने ले आये!

फ़्रेंच में गधे को 'Le baudet' कहा जाता है। माँ उसे देख कर बड़ी ख़ुश हुईं और उन्होंने उसका नाम 'बोदे' रख दिया, उदार ने उनसे उसे आश्रम में रखने की अनुमति माँगी, अनुमति मिल गयी तो बोदे आश्रम का गर्दभ बन गया!

अब उसकी देखभाल कौन करे? तेरह-चौदह वर्ष का किशोर रिचर्ड तभी इंग्लैण्ड से आश्रम में रहने के लिए आया था। माँ ने बोदे की देखभाल का काम रिचर्ड को सौंप दिया।

रिचर्ड भी किशोर था, बोदे भी किशोर, दोनों साथ-साथ पनपने लगे। धीरे-धीरे, बोदे के साथ-साथ रिचर्ड गर्दभ-जाति का ही मित्र बन गया। एक बार रिचर्ड को ख़बर मिली कि ख़ून से तर-बतर कोई गधा रास्ते में पड़ा है, एक कान उसका कटा हुआ है। समाचार पाते ही रिचर्ड दौड़ पड़ा। वह न केवल उसे अस्पताल ले गया बल्कि तब तक वहीं रहा जब तक कि उस गधे की मरहम-पट्टी न हो गयी। तब से रिचर्ड आश्रम में 'गर्दभ-दयालु रिचर्ड' के नाम से मशहूर हो गया!

१४ जुलाई फ़्रांसीसी राष्ट्रीय दिवस है। पॉण्डिचेरी के वासी यह उत्सव एक दिन पहले से ही मनाना शुरू कर देते हैं *(ध्यान रहे कि पहले पॉण्डिचेरी फ़्रांसीसियों के अधीन था—सं.)*। यहाँ के लोग गर्दभ-दौड़ का भी आयोजन करते थे।

प्रतियोगिता के दिन रिचर्ड अपने गधे के साथ आ पहुँचा।

दौड़ की शर्त यह थी कि हर एक अपने गर्दभ पर सवार होकर अन्तिम रेखा तक जायेगा।

रिचर्ड भी अपने गधे के साथ तैयार हो गया। वह एक बलवान् पशु था और अगर कोई जानवर उसके पास फटकता तो वह आगे झपट कर उसे काटने पर उतारू हो जाता। दूसरी मुश्किल यह थी कि दौड़ की आरम्भ-रेखा की वह परवाह नहीं कर रहा था। तो यह निश्चय लिया गया कि उसे दूसरे गधों के पीछे खड़ा किया जायेगा। तो एक ही बार में दो

समस्याएँ सुलझ गयीं।

दौड़ शुरू हुई। रिचर्ड का गर्दभ बड़ा तगड़ा था, वह औरों से आगे निकल गया और जो कोई उससे आगे बढ़ने की कोशिश करता उसे वह काटने को लपकता।

रिचर्ड का गधा औरों से आगे दौड़ रहा था, लेकिन समापन-रेखा से कुछ गज़ पहले वह अचानक रुक गया, वहीं थमा रहा, किसी भी हालत में उसे कोई टस से मस नहीं कर पाया।

और कोई उपाय न देख रिचर्ड उसकी पीठ से उतरा और सचमुच उसने उसे ढकेल कर अन्तिम रेखा पार करवायी। इस तरह उसने दौड़ जीती।

'I Remember *भाग १' पुस्तक से* *प्रणव भट्टाचार्य*

गौरेया के लिए अनुकम्पा

रोज़ की तरह मैं सवेरे पाँच बजे उस पवित्र घर में गया जो मेरे स्वामी और मेरी माँ का निवास-स्थान है। मेरा इतना सौभाग्य कि मुझे उन्होंने उस घर के एक हिस्से की सफ़ाई का काम सौंपा था। मैं उसी के लिए रोज़ सवेरे जाता था और माँ स्वयं मेरे लिए दरवाज़ा खोलतीं और मैं अपने आह्लादकारी कार्य में जुट जाता।

एक दिन, दरवाज़ा खोलते ही माँ वहीं खड़ी हो गयीं और श्रीअरविन्द का नाम लेकर उन्होंने मुझसे उस दिन बहुत सावधान और शान्त रहने के लिए इसलिए कहा कि कहीं मैं बीच के बड़े दरवाज़े पर बैठी गौरेया के आराम में खलल न डालूँ।

मैंने इसे भागवत आदेश मान कर वादा किया कि मैं बहुत सतर्क रहूँगा। फिर मैंने अन्दर पाँव रखा और माँ चली गयीं। एकदम चुपचाप, धीमे क़दम रखता हुआ मैं उस दरवाज़े से गुज़रा और बड़े अहोभाव और आनन्द के साथ मैंने उस गौरेया को देखा जो दरवाज़े के एकदम ऊपर निश्चल बैठी थी।

मैं गद्‌गद हो उठा। हमारे दिव्य प्रभु कितने अनुकम्पाशील हैं! वे रात को उस बड़े कमरे में चहलक़दमी किया करते थे, तभी उन्होंने इस नन्हीं जान को वहाँ देखा होगा जो उस शान्त वातावरण में चुपचाप रात बिताना चाहती थी—उस भव्य वातावरण में जो सदैव वहाँ विराजता था। न केवल

हम मानव प्राणी उनकी करुणा के पात्र थे, बल्कि—छोटे हों या बड़े—सभी प्राणियों के लिए उनके उस विशाल और वैश्व हृदय में प्रेममय स्थान था।

सचमुच हम सब धन्य हैं, सचमुच यह धरती धन्य है कि हमारे पास 'वे' हैं, 'वे' दिव्य स्वामी हैं, 'वे' वैश्व 'प्रभु' हैं जो सशरीर धरती पर उतरे हैं, 'वे' जो अपनी ऊँचाइयों से हमारे ऊपर हमेशा झुके रहते हैं और अपने प्रेमपूर्ण हृदय की गहराइयों में हमेशा हमें आलिंगन में बाँधे रहते हैं।

'A Few Reminiscences' *पुस्तक से* *पूजालाल*

तेंदुआ

श्रीमाँ पशुओं, पक्षियों, कीड़े-मकौड़ों की गतिविधियाँ बड़ी बारीक़ी से देखा करती थीं। वे उनके साथ अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान कर सकती थीं। उन्होंने कहा था : "पशुओं में भी ईर्ष्या-जलन, घृणा और दूसरों पर अपना रौब जमाने की आदत साफ़ नज़र आती है।"

माँ ने इस सन्दर्भ की एक मज़ेदार कहानी हमें सुनायी थी। फ़्रांस में एक बार वे किसी चिड़ियाघर में गयी थीं। उन्होंने वहाँ काले तेंदुओं का एक जोड़ा देखा जो एक बहुत बड़े पिंजरे में था, जिसमें गुफा जैसी बनायी गयी थी और वे दोनों अपनी पूँछ समेटे उसमें बैठे हुए थे।

माँ ने नर तेंदुए को ज़्यादा मैत्रीपूर्ण पाया और उसे देखते-देखते वे पिंजरे की ओर बढ़ीं, बहुत स्नेहपूर्वक उन्होंने उससे कहा : "कितने सुन्दर हो तुम और कितने भले!"

मैंने पहले ज़िक्र किया था कि माँ पशुओं की भावनाओं को पढ़ सकती थीं। वे भी अपने तरीक़े से माँ के भावों को समझ सकते थे।

जब माँ बड़े प्यार से उससे बातें कर रही थीं वह अँगड़ाई लेता हुआ उठा, बड़ी-सी जम्हाई ली, और माँ को देखते हुए, पालतू पशु की तरह अपनी पूँछ हिलाने लगा। फिर अजीब-सी घरघराहट के साथ वह श्रीमाँ की ओर बढ़ा, पिंजरे के सरिये के पास आ खड़ा हुआ।

माँ ने कहा : "कितने भद्र हो तुम। कितने सुन्दर और कितने भले।"

अपनी ठकुरसुहाती होते देख वह प्रसन्नतापूर्वक पूँछ हिलाने लगा।

दूसरी तरफ़ मादा तेंदुआ, जो यह सब देख रही थी, ग़ुस्से से गुर्राने लगी। कुछ देर तक तो वह यह सहती रही, फिर उससे न रहा गया, तपाक्

से उठी, ज़ोर से गुर्राती हुई आयी और अपने साथी पर दे दनादन अपनी पूँछ से प्रहार करने लगी। वह यह स्पष्ट कह रही थी कि बहुत हुआ, और वह नाराज़गी दिखाती हुई दूर जाकर बैठ गयी, लगातार गुर्राती रही।

कुछ असमञ्जस में पड़ा नर तेंदुआ कभी उसे देखता तो कभी माँ पर नज़र डालता। कुछ देर बाद वह सरिये से हट कर, चुपचाप अपनी साथिन के पास जा बैठा।

जानवरों को मार डालना या उनका शिकार करना माँ को कतई पसन्द न था।

'I Remember *भाग १' पुस्तक से* *प्रणव भट्टाचार्य*

BOX

निश्चय ही, वे जानवर—सभी जानवर—यह अनुभव कर सकते हैं कि तुम्हें डर लग रहा है या नहीं, तुम भले डर न दिखाओ। वे इसे विलक्षण रूप से, उस सहज वृत्ति से जान लेते हैं जो मनुष्यों में नहीं होती। वे अनुभव कर सकते हैं कि तुम्हें डर लग रहा है, तुम्हारे शरीर में से एक स्पन्दन पैदा होता है जो उनके अन्दर एक अत्यधिक अप्रिय संवेदन पैदा करता है। अगर वे बलवान् पशु हों तो उससे क्रुद्ध हो जाते हैं, अगर वे निर्बल पशु हों तो उनमें आतंक पैदा हो जाता है। लेकिन अगर तुम्हारे अन्दर ज़रा भी भय न हो, अगर तुम पूर्ण विश्वास के साथ जाओ, तुम्हारे अन्दर बहुत विश्वास हो, अगर तुम उनके पास मैत्रीपूर्ण ढंग से जाओ, तो तुम देखोगे कि उनमें भय नहीं है; वे डरे हुए नहीं हैं; वे तुमसे डरते नहीं और घृणा भी नहीं करते; और वे बहुत विश्वास भी करते हैं।

मैं तुम्हें इसके लिए प्रोत्साहित नहीं कर रही कि तुम जितने भी शेरों के पिंजरे देखो उनमें जा घुसो, फिर भी, बात ऐसी है। जब तुम्हें कोई भौंकता हुआ कुत्ता मिल जाये और तुम डर जाओ तो वह तुम्हें काट लेगा, अगर तुम्हें डर न लगे तो वह चला जायेगा। लेकिन तुम्हें सचमुच नहीं डरना चाहिये, केवल न डरने का दिखावा न हो, क्योंकि दिखावे का नहीं, स्पन्दनों का महत्त्व है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३१-३२

‘पुरोधा’ :

दैनन्दिनी

जून

१. प्रश्नः हम लालसाओं और भयों से कैसे पिण्ड छुड़ा सकते हैं?
उत्तरः उन्हें हमेशा अस्वीकार करो, भयों को त्यागो। माताजी के संरक्षण पर भरोसा रखो, और हमेशा अपने-आपको उनके प्रति खुला रखो। —श्रीअरविन्द

२. प्रश्नः हम भगवान् में डुबकी कैसे लगा सकते हैं?
उत्तरः तीव्र अभीप्सा और एकाग्रता द्वारा। —श्रीअरविन्द

३. प्रश्नः भगवान् को निरन्तर याद रखने के लिए हमें क्या करना चाहिये?
उत्तरः अभीप्सा करो और हमेशा कोशिश में लगे रहो। —श्रीअरविन्द

४. प्रश्नः हम अहंकार से कैसे पिण्ड छुड़ा सकते हैं?
उत्तरः वह जहाँ कहीं आये तुम्हें उसे खोज कर निकाल बाहर फेंकना होगा। —श्रीअरविन्द

५. प्रकृति में ज्योति के लिए सहज प्यास होती है।

६. सच्ची बुद्धिमानी तो यह है कि तुम जो कुछ करो ख़ुशी से करो, और यह तभी सम्भव है यदि तुम जो कुछ करो उसे प्रगति का साधन बना लो। पूर्णता पाना बहुत कठिन है और इसे उपलब्ध करने के लिए हमेशा बहुत प्रगति की आवश्यकता होती है।

७. हमेशा विरोधी शक्तियों के बारे में सोचते रहना और उनसे डरना बहुत भयानक दुर्बलता है।

८. मैं हमेशा यही सलाह देती हूँ कि मन्त्र को हृदय की गहराइयों से सच्ची अभीप्सा के रूप में उठने दो।

९. हमेशा भागवत उपस्थिति पर एकाग्र होओ तो सुरक्षा अधिक सहज होगी।

१०. रही बात दुर्भावना, ईर्ष्या, झगड़ों और तानों की, तो तुम्हें सच्चाई के साथ इन सबसे ऊपर उठना चाहिये और कड़वे-से-कड़वे शब्दों के उत्तर में भी एक सद्भावनापूर्ण मुस्कान देनी चाहिये।

११. जब तक तुम अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में बिलकुल निश्चित न हो,

साधारण नियम के रूप में चुप रहना ही ज़्यादा अच्छा है।

१२. दूसरों पर नियन्त्रण रखने के लिए स्वयं अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण पाना अनिवार्य शर्त है।

१३. अगर राजनीति छल, कपट और मिथ्यात्व पर आधारित होने की जगह दिव्य सत्य और भागवत कृपा का यन्त्र बन जाये तो यह मानव एकता और सामञ्जस्य की ओर बड़ा क़दम होगा।

१४. धरती का भविष्य चेतना के परिवर्तन पर आधारित है।

१५. हर बाधा को ग़ायब हो जाना चाहिये, सत्ता के हर भाग में अज्ञान के अन्धकार का स्थान भागवत ज्ञान के प्रकाश को लेना चाहिये।

१६. प्रगति का कोई अन्त नहीं है और हर रोज़, तुम जो कुछ करते हो उसे ज़्यादा अच्छी तरह करना सीख सकते हो।

१७. पीछे मत देखो, हमेशा आगे देखो, तुम जो करना चाहते हो उसे देखो —तुम निश्चय ही प्रगतिशील रहोगे।

१८. ऐसा हो कि नया प्रकाश धरती पर फैले और मानव जीवन की अवस्था को बदल दे।

१९. सचमुच और प्रभावी रूप से हमेशा मेरे निकट रहने के लिए तुम्हें अधिकाधिक सच्चा, मेरे प्रति खुला हुआ, निष्कपट होना चाहिये। सभी दुराव और कपट को निकाल फेंको, ऐसा निश्चय करो कि तुम कोई ऐसी चीज़ न करोगे जो मुझे तुरन्त न बता सको।

२०. जो भगवान् को हर क्षण, हर गति में आन्तरिक पथ-प्रदर्शक मानते हैं उनके लिए वे भाई की तरह निकट, सदा निष्ठावान् मित्र की तरह और हमेशा सहायता करने के लिए तैयार होंगे।

२१. अगर तुम्हें यह विश्वास हो कि 'वे' सभी ग़लत चीज़ों को मिटा सकते हैं तो वे तुम्हारी सभी भूलों, सभी भ्रान्तियों को बिना थके मिटा देंगे। और हर क्षण तुम उनकी असीम कृपा का अनुभव करोगे।

२२. अगर तुम हर क्षण यह आशा रखो कि तुम्हें ऊपर उठाया और भगवान् की ओर खींचा जायेगा तो वे तुम्हें ऊपर उठाने आयेंगे और तुम्हारे निकट, निकटतर, सदा निकटतम रहेंगे।

२३. भगवान् हर जगह, हर चीज़ में हैं। तुम्हें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये, क्षण-भर के लिए भी यह न भूलना चाहिये।

२४. पूर्ण निष्कपटता, पूर्ण ईमानदारी और तुम जो कुछ करो उसमें गरिमा का भाव—ताकि तुम चीज़ को उसी तरह करो जिस तरह उसे करना चाहिये।

२५. लोग तुम्हारे बारे में जो द्वेषपूर्ण बेवक़ूफ़ियाँ कहते हैं अगर तुम उनसे परेशान, उद्विग्न या हतोत्साह हो जाते हो तो तुम पथ पर बहुत आगे न बढ़ पाओगे।

२६. सोने से पहले कोई मन्त्र या शब्द जपना या प्रार्थना करना अच्छा है।

२७. कोई समस्या आये तो उससे युद्ध करने की इच्छा के स्थान पर तुम उसे परम प्रज्ञा के हवाले कर दो—कि वह सभी दुर्भावनाओं, ग़लतफ़हमियों, बुरी प्रतिक्रियाओं के साथ जो उचित है, वह करे।

२८. अगर तुम्हारा मन उत्तेजित रहे, परस्पर विरोधी शक्तियों का क्षेत्र रहे तो तुम प्रगति नहीं कर सकते।

२९. अगर तुम्हारे अन्दर कोई बुरा विचार हो जो तुम्हें सताता और परेशान करता हो तो उसे बहुत सतर्कता से, बहुत सावधानी के साथ, अपनी चेतना और संकल्प लगा कर एक काग़ज़ पर लिख लो, फिर एकाग्रता के साथ इस संकल्प से फाड़ डालो कि विचार भी इसी तरह फट जाये। इस तरह तुम उससे छूट जाओगे।

३०. घृणा को सामञ्जस्य में बदलो।
ईर्ष्या को उदारता में बदलो।
अज्ञान को ज्ञान में बदलो।
अन्धकार को प्रकाश में बदलो।
मिथ्यात्व को सत्य में बदलो।
धूर्तता को भलाई में बदलो।
भय को अभय में बदलो।
सन्देह को श्रद्धा में बदलो।
अव्यवस्था को व्यवस्था में बदलो।
पराजय को जय में बदलो।

एक शिष्या के नाम पत्र

(एक फ्रेंच महिला के नाम जो ६६ वर्ष की उम्र में १९३७ और १९४१ के बीच आश्रम में रही थीं।

यह शिष्या सितम्बर १९३७ के अन्त में फ्रांस चली गयीं और १९३८ के मार्च में फिर आश्रम आ गयीं और १९४१ तक रहीं।)

श्रीअरविन्द का और मेरा यह ख़याल है कि तुम्हारे लिए प्रणाम के लिए आने से पहले एक सप्ताह प्रतीक्षा करना ज़्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण होगा। और सप्ताह में दो बार का ध्यान तो तभी सम्भव होगा जब तुम ज़रा भी दुर्बलता अनुभव न करो; क्योंकि अभी लोग बहुत हैं और भौतिक वातावरण श्वास लेने के लिए बोझिल-सा है।

इसलिए हम तुम्हें और कुछ समय धीरज धरने की सलाह देते हैं ताकि अपने भौतिक बल को लौट आने के लिए समय दे सको। इसके लिए हमारी सहायता और हमारा संरक्षण तुम्हारे साथ हैं।

बहुत प्रेम के साथ। २६ अगस्त १९३८

चिन्ता न करो; तुमने नीरवता में बहुत पहले मुझसे यह बात कही थी जिसे तुमने आज शाम को "स्वीकार" किया है। और मैंने तुम्हें हमेशा यही एक उत्तर दिया है : चिन्ता न करो; यह ज़रूरी नहीं है कि सभी उपहार भौतिक हों और निश्चय ही उपहारों में सबसे अच्छा उपहार है—आत्मदान।

२९ सितम्बर १९३८

ये सहज प्रतिवर्ती क्रियाएँ अवचेतना को प्रकट करती हैं। ऐसे सहज आवेशों का पीछा करते हुए तुम धीरे-धीरे अवचेतना के अछूते वन के मार्ग को परिष्कृत कर सकती और उसमें प्रकाश ला सकती हो।

चिन्ता न करो और सबसे बढ़ कर यह कि दुःखी न होओ! बारह तारीख़ को *ख़ुराक* शायद कुछ ज़्यादा तीव्र हो गयी थी और परिणामस्वरूप हज़म करने में कुछ कठिनाई हुई। अगर तुम बस अचञ्चल रह सको, **बहुत अचञ्चल** तो सारी चीज़ पैठ जायेगी। तब प्रकाश पुनः हमेशा से

ज़्यादा प्रकाशमान और सुन्दर प्रकट होगा।

भय न करो—किसी में वह शक्ति नहीं है जो तुम्हें मुझसे दूर ले जाये क्योंकि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ, तुम्हारे अन्दर हूँ।

सप्रेम। १३ नवम्बर १९३८

माताजी,

मैंने डॉक्टर के कहे अनुसार दवाई नहीं ली क्योंकि मैं आपको लिखने वाली थी। मैं आपसे पूछे बिना कुछ न करूँगी। क्या मैं पैरिस के डॉक्टर 'क' की राय जानने के लिए उन्हें पत्र लिखूँ?

हाँ, ज़्यादा अच्छा होगा कि अपने पैरिस के डॉक्टर से सलाह किये बिना कुछ न करो।

क्या मैं होम्योपैथिक डॉक्टर से सलाह करूँ? मैं उसे नहीं जानती।

नहीं, ज़रूरी नहीं है; जितने कम हो सकें उतने कम डॉक्टर, जितनी कम हो सकें उतनी कम दवाइयाँ!!

'क' मुझे आग्रहपूर्ण सलाह दे रहा है कि मैं 'जेनास्प्रीन' लूँ। मेरी इच्छा नहीं है। मैं शामक कभी नहीं लिया करती। उसका कहना है कि यह शामक नहीं, रक्त-संकुलता को दूर करने वाली चीज़ है। मैं इस बारे में कुछ नहीं समझती। मैंने उससे कह दिया है कि मैं आपसे पूछूँगी।

नहीं, नहीं, कोई दवाइयाँ नहीं! जितनी अधिक दवाइयाँ ली जायें उतना ही वे शरीर के स्वाभाविक प्रतिरोध को कम करती हैं।

तनाव को दूर करने के लिए दस मिनट की आन्तरिक और बाह्य **सच्ची अचञ्चलता** दुनिया-भर की सभी दवाइयों से अधिक प्रभावकारी होती है। नीरवता में ही सबसे अधिक प्रभावकारी सहायता मिलती है।

हमारे आशीर्वाद के साथ। ३० जनवरी १९३९

सच कहा जाये तो मेरा ख़याल है कि डॉक्टर की बात ठीक है; तुम्हारी

शिकायत स्नायविक है। मेरा मतलब यह है कि यह आंगिक नहीं, क्रियागत विकार है। यह तथ्य कि तुम्हारे सिर में दर्द है इस बात को झुठलाता नहीं, क्योंकि स्नायविक सिर-दर्द भी हो सकता है और उससे बहुत अधिक कष्ट होता है। बहरहाल, स्नायविक हो या न हो, यह बिलकुल स्पष्ट है कि अगर भगवान् के साथ तुम्हारा सतत सम्पर्क हो तो तुम पूरी तरह स्वस्थ हो जाओगी।

हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

अत्यधिक स्नेह के साथ। ९ फ़रवरी १९३९

इंजेक्शन न लेना कितना अच्छा होगा! है न?

और बातों के बारे में चिन्ता न करो। भागवत कृपा हर चीज़ के, यहाँ तक कि दोषों के भी पीछे है, और उसकी सहायता से ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो प्रगति के लिए अवसर न बनायी जा सके।

हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं। २३ मार्च १९३९

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १७, पृ. २८१-८४

'योग के तत्त्व '

कुछ व्याख्याएँ

क्या धार्मिक अभ्यास, जैसे कि जप करना, पवित्र ग्रन्थों को पढ़ना, पूजा करना इत्यादि 'दिव्य जीवन' की अभीप्सा के संकेत नहीं हैं? क्या वे उच्चतम 'सत्य' को पाने के लिए सहायक नहीं हैं?

ये चीज़ें किस भाव से की जाती हैं सब कुछ उस पर निर्भर होता है। व्यक्ति इन सभी चीज़ों को करने के बाद भी अनाध्यात्मिक बना रह सकता है, यहाँ तक कि असुर भी।

क्या पवित्र स्थलों की यात्रा करने तथा अनेक देवी-देवताओं की पूजा करने का कोई आध्यात्मिक महत्त्व है? क्या यह 'भागवत सत्य' को पाने में सहायता करता है?

इसका 'सत्य' के साथ कोई वास्ता नहीं; यह साधारण चेतना के लिए एक धार्मिक अभ्यास है।

वैष्णवों में सामान्य, 'संकीर्तन' की आध्यात्मिक उपयोगिता क्या है?

इसमें भक्ति को बढ़ाने की शक्ति है, विशेषकर प्राणिक भागों में।

मैंने किसी धार्मिक पुस्तक में पढ़ा था कि यदि परिवार का एक सदस्य आध्यात्मिक उपलब्धि को पा ले तो दूसरे सभी सदस्यों को भी उसके प्रभाव से 'मुक्ति' मिल जाती है? यह कहाँ तक सच है?

यह सच नहीं है। प्रत्येक की अपनी नियति है तथा एक जीवन में एक विशेष परिवार में प्रवेश करना केवल एक संयोग होता है।

रामकृष्ण कहा करते थे कि यदि कोई व्यक्ति भगवान् को याद करे और किसी भी रूप में, भले कुछ समय के लिए ही सही, किसी दूसरे के सामने उनके नाम को दोहराये तो उसका फल एक दिन मिलेगा और यह चीज़ उस व्यक्ति में आध्यात्मिक परिवर्तन ले आयेगी। क्या ऐसा होता है?

यह तो ऐसा ही हुआ मानों तुम एक चूहे को "शेर, शेर" कह कर शेर में बदलना चाहो।

क्या ऐसे व्यक्तियों को जो पूरी तरह से सांसारिक जीवन में रहते हैं तथा भगवान् को सिर्फ़ मुश्किल तथा संकट के समय ही याद करते हैं, पूरी तरह से भगवान् की ओर मोड़ना सम्भव है?

सभी के लिए भावी सम्भावना होती है, यहाँ तक कि नास्तिक के लिए भी या उसके लिए भी जो कभी भगवान् के बारे में सोचता तक नहीं।

अगर नास्तिक के लिए भी या जो कभी भगवान् के बारे में सोचता तक नहीं, उसके लिए भी भविष्य में भगवान् की ओर पूरी तरह

मुड़ने की सम्भावना है तो फिर भला क्यों कोई आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करे और इसकी कठिनाइयों का सामना करे?

यह भावी सम्भावना शायद दस हज़ार वर्षों के बाद उपलब्ध हो और तब भी यह केवल योगाभ्यास करके ही आ सकती है।

सामान्य व्यक्ति विपत्ति के समय भगवान् की कृपा की क्रिया का आवाहन करता है, लेकिन बाद में भगवान् को भूल जाता है। क्या मनुष्यों के जीवन में कृपा केवल इसी तरह काम करती है?

केवल सामान्य व्यक्ति के लिए ही ऐसा होता है, उनके लिए नहीं जो भगवान् को खोजते हैं। भगवान् की विशेष 'कृपा' भगवान् के चाहने वालों के लिए होती है—दूसरों के लिए यह एक 'वैश्व इच्छा' है जो उनके कर्मों के माध्यम से क्रिया करती है।

क्या 'भागवत इच्छा' तथा 'भागवत कृपा' के बीच कोई अन्तर है? क्या वे समान नहीं हैं?

'भागवत इच्छा' सभी चीज़ों में कार्य करती है—वह कोई भी काम कर सकती है। 'भागवत कृपा' मदद करने और बचाने आती है।

क्या यह कहा जा सकता है कि एक साधक जो अपने वर्तमान जीवन में स्वयं को भगवान् की ओर पूरी तरह से नहीं खोल सका, वह फिर से अगले जीवन में यौगिक जीवन को ग्रहण कर, अपनी साधना को जारी रख सकता है?

हाँ, यह काफ़ी हद तक निश्चित है कि वह ऐसा करेगा, मगर उसे पहले प्रतिकूल तत्त्वों को निकाल बाहर करना होगा जो दोबारा शुरू करने से पहले उसके रास्ते में आड़े आते हैं।

क्या यह कहा जा सकता है कि जो लोग अपने वर्तमान जीवन में सांसारिक लक्ष्यों का अनुसरण करके केवल आंशिक रूप में भगवान् की ओर मुड़े हुए हैं, क्या वे अपने अगले जीवन में आध्यात्मिक

जीवन को पूरी तरह से अपना सकते हैं?

इसके लिए कोई कड़ा नियम नहीं है—वे क्या थे, क्या हैं और क्या बनने की अभीप्सा रखते हैं उसके अनुसार अपने क्रम-विकास का अनुसरण करेंगे।

ऐसी धारणा है कि अगर किसी व्यक्ति ने अपने सारे जीवन में कभी भी भगवान् के बारे में सोचा तक न हो, वह अपनी मृत्यु-शय्या पर आख़िरी श्वास लेते समय सिर्फ़ 'उनके' नाम का उच्चारण करे या 'उन्हें' याद करे, तो उसे अपने अगले जीवन में मुक्ति मिल जायेगी। क्या ऐसी धारणा में कोई सत्य है?

नहीं—ये सभी अन्धविश्वास हैं। अगर मुक्ति इतनी सरल होती तो सभी अपनी सारी ज़िन्दगी मनमानी करके, केवल चालाकी से अन्त में "भगवान्" को याद करके, चरम अवस्था को प्राप्त कर लेते। यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है।

पुराणों में कई उच्चतर लोकों की बातें कही गयी हैं। क्या मृत्यु के बाद लोग ऐसे लोकों में ऊपर उठ कर वहाँ रह सकते हैं?

वे केवल कुछ में से गुज़रते हैं, सभी में से नहीं।

लोगों का मानना है कि जो व्यक्ति सच्चरित या आध्यात्मिक जीवन बिताता है वह मृत्यु के बाद स्वर्ग जाता है। क्या यह सच है?

वह मृत्यु के बाद कुछ समय के लिए सुखद अवस्था में रह सकता है, बस इतना ही।

पुराणों में यह भी कहा गया है कि अगली दुनिया में हज़ारों नरक हैं और जो लोग इस जीवन में बुरे काम करते हैं उन्हें मृत्यु के बाद वहाँ जाना तथा रहना पड़ेगा। क्या यह सच है?

यह अन्धविश्वास है। मृत्यु के बाद लोग अमुक प्राणिक या मानसिक लोकों में से गुज़रते हैं या अपने स्वभाव तथा जीवन के कर्मों के परिणामस्वरूप अमुक मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में से गुज़रते हैं; बाद में वे चैत्य लोक में

चले जाते हैं और धरती पर कुछ समय बाद लौटते हैं।

नींद में कई बार मैं अपने उन सगे-सम्बन्धियों से मिलता हूँ और उनसे बातें भी करता हूँ जो बहुत पहले दिवंगत हो चुके हैं। ऐसा क्यों होता है?

वे प्राणिक जगत् में भौतिक जीवन के विचारों तथा उसकी विशेषताओं को बनाये रखते हैं। तुम अपने प्राण में उनसे मिलते हो।

क्या यह सम्भव है कि साधक का कोई दिवंगत सम्बन्धी उसके मार्ग में आकर उसकी साधना में बाधा डाले?

केवल तभी अगर साधक इसकी अनुमति दे।

क्या योग में ज्योतिष की कोई जगह नहीं है?

ज्योतिष एक गुह्य विज्ञान है, योग का हिस्सा नहीं, किसी भी चीज़ को योग का हिस्सा बनाया जा सकता है, अगर उसे सही मनोभाव से किया जाये।

आध्यात्मिक जीवन के लिए व्यक्ति को क्या ज्योतिष से कोई मदद मिल सकती है?

नहीं।

ज्योतिष के प्रति किसी का मनोभाव कैसा होना चाहिये?

जैसे किसी भी अन्य कला या विज्ञान के प्रति होता है।

योग में गुह्य शक्ति की क्या जगह है?

अतिभौतिक स्तरों की सूक्ष्म शक्तियों को जानना और उनका उपयोग करना योग का हिस्सा है।

गुह्य प्रयास तथा शक्ति का क्या मतलब है?

यह प्रसंग पर निर्भर करता है। आमतौर पर इसका मतलब होगा, प्रकृति की गुह्य शक्तियों का उपयोग करना तथा इन शक्तियों के माध्यम से प्रयास करना। लेकिन किसी और प्रसंग में 'गुह्य' का मतलब कुछ और भी हो सकता है।

क्या हर योगी को गुह्य प्रयास में से गुज़रना पड़ता है?

नहीं, सभी में यह क्षमता नहीं होती। जिनके अन्दर यह नहीं होती, उन्हें जब तक वह दी नहीं जाती, तब तक प्रतीक्षा करनी होती है।

क्या दिव्य शक्ति यौगिक शक्ति के समान ही है—जिसे योगी अपनी तपस्या के द्वारा विकसित करते हैं?

उस तरह की यौगिक शक्ति दिव्य शक्ति के जैसी नहीं होती। यहाँ तक कि असुर तथा राक्षस में भी शक्तियाँ होती हैं। सच्ची यौगिक शक्ति वह है जो दिव्य चेतना तथा उसके कार्यों के साथ सम्पर्क या एकता से आती है।

क्या साधक के जीवन में चमत्कार होते हैं?

चमत्कार से तुम्हारा क्या मतलब है? जिसे लोग चमत्कार कहते हैं वह केवल कोई ऐसी चीज़ होती है जिसे चौंकाने वाले तरीक़े से, किसी ऐसी प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है जो लोगों के लिए अनजान होती है या जिसे उनका मन समझ नहीं सकता।

क्या यौगिक सिद्धि का मतलब चमत्कारिक तरीक़े से कुछ करने की शक्ति है? अगर किसी साधक ने इसे उपलब्ध कर लिया है तो क्या ऐसी शक्ति का उपयोग करना ग़लत है?

मैंने समझाया है कि चमत्कार जैसी कोई चीज़ नहीं होती। यदि कोई उच्चतर चेतना उसके अन्दर किसी उच्चतर शक्ति को खोल दे तो साधक को उसका उपयोग नयी चेतना के एक भाग के रूप में करना चाहिये, लेकिन करना चाहिये सही तरीक़े से—अहंकार, स्वार्थ, घमण्ड या अभिमान के बिना।

समाप्त

श्रीअरविन्द

जादू की कड़ी

('हायर कोर्स' पहले वर्ष की विद्यार्थिनी का लेख)

शाम ढलने लगी थी, समुद्र-तट ख़ाली-ख़ाली-सा नज़र आ रहा था। तेज़ हवाएँ चलने लगीं पर ज्योति, पत्थरों पर बैठी, अपने स्थान से टस-से-मस न हुई। यश का इन्तज़ार करते-करते न जाने कहाँ उसका मन जा पहुँचा। उसकी नज़रें एकटक एक अनाथ ग़रीब बच्ची को निहार रही थीं जो महज़ ५ साल की थी। उस बच्ची को अकेला घूमते देख उसको भी अपना अनाथ बचपन याद आने लगा। क़रीबन २२ साल पहले वह भी एकदम ऐसे ही समुद्र-तटपर भटक रही थी और बालू और प्लास्टिक की बोतलों से खेल रही थी कि अचानक एक ११ साल का बच्चा आकर उसके साथ खेलने लगा। अब यह रोज़ का नियम बन गया और वह लड़का नित नये-नये खिलौने, पुरानी चद्दरें आदि लाने लगा। ४-५ दिनों के अन्दर उनकी दोस्ती एकदम गहरी हो गयी।

एक दिन अचानक वह लड़का नहीं आया, ज्योति को आज और भी ज़्यादा अकेला-सा महसूस हो रहा था। बहुत मुश्किल से उसके अगले २ दिन गुज़रे। तीसरे दिन अचानक वह लौटा पर इस बार वह अकेला न था, उसके माता-पिता भी साथ आये थे। इस बार लड़के के हाथों में खिलौनों के बस्ते की जगह एक अटैची थी। आते ही वह लड़का मुझसे बातें करने लगा और उसकी माँ ने मेरे पास जो भी सामान था उसे एक गठरी में बाँधा और फिर हम दोनों को एक गाड़ी में बैठाया और ख़ुद सामने वाली सीट पर बैठ गयीं। लड़के के पापा कुछ देर बाद आये और हम सबको अपने घर ले गये। अब जाकर मेरी समझ में आया कि उस लड़के के परिवार ने मुझ पर तरस खाकर और अपने बेटे की ज़िद से परेशान होकर मुझे आख़िरकार गोद ले लिया।

गाड़ी एक बड़े से घर के सामने आकर रुक गयी। सब उतरने लगे। उस दिन मेरी ज़िन्दगी के नये पड़ाव की शुरुआत होने वाली थी और इसमें मेरे अतीत की डोर वह लड़का था। मैंने अनजाने में डर के मारे उसकी

कमीज़ कस कर पकड़ ली। वह मेरी तरफ़ घूमा और उसने मेरे हाथ को थामा। उसके हाथ पकड़ते ही मानों मेरी नसों में सुकून की धारा बहने लगी। इस कष्ट और डरावनी घड़ी में बस मेरा हाथ थाम कर उस लड़के ने मानों यह बयां कर दिया कि वह हर पल मुझसे कन्धे-से-कन्धा जुड़ाये रखेगा, हर मुश्किल घड़ी में मेरी ढाल बनेगा। आज मुझे सबसे ज़्यादा इस बात से ख़ुशी न थी कि मुझ-जैसी अनाथ को एक घर-परिवार मिल गया था बल्कि यह कि आज मुझे एक भाई मिल गया था।

अचानक एकदम वैसे ही हाथों ने आकर मेरा हाथ थामा और मुझे अपने ख़यालों से बाहर निकाला। अपनी यादों की सोच से उदास मेरी आँखें यश को देखते ही चमक उठीं। मेरा भाई मेरे पास लौट आया था।

रात के नौ बज रहे थे, वह मुझे गाड़ी की ओर ले जाने लगा और अचानक मेरे अन्दर कुछ खटका और मैंने उसके हाथ को खींच कर रोका। जो जादू यश ने मुझ पर २२ साल पहले खेला था, जिसने मेरी ज़िन्दगी बदल दी थी, शायद आज वह जादू खेलने की मेरी बारी थी। विश्वास के साथ, यश का हाथ थामे मैं चल दी अपना जादू दिखाने।

—अनुष्का राय

कपाट हमेशा खुले रहेंगे

आओ बच्चो, आज सुनें मनोज दास जी की लिखी हुई एक ऐसे चतुर इन्सान की कहानी जो अलग-अलग रूपों में विभिन्न देशों में प्रचलित है—

घनी, अँधेरी रात। घोड़े पर सवार उस प्रदेश के राजा सुनसान सड़क पर चले जा रहे थे। हमेशा की तरह वे छद्मवेशी थे, क्योंकि हर दयालु, नेक और न्यायप्रिय राजा की तरह वे भी बीच-बीच में रात को रूप बदल कर अपनी प्रजा के दुःख-सुख का हिसाब रखते थे। उस देश के लोग निश्चिन्त थे। न वहाँ चोरी-चकारी की ख़बरें सुनने में आतीं, न झगड़े-झंझट की वारदातें होतीं। महाराज प्रसन्न, प्रजा ख़ुशहाल—यानी 'जस राजा तस प्रजा' की कहावत वहाँ बिलकुल खरी उतरती।

उस रात भी राजा चुपचाप अपने प्रदेश का निरीक्षण कर रहे थे। सैनिकों को उनके साथ चलने की मनाही थी, न कोई डर होता था न

आशंका, लेकिन फिर भी अंगरक्षक अपने रक्षक के आस-पास कहीं-न-कहीं होते ज़रूर थे।

अचानक आसमान बादलों से घिर आया, घटाटोप अँधेरा छा गया, रोशनियाँ गुल हो गयीं। मूसलाधार बारिश में भी राजा प्रसन्नवदन चले जा रहे थे—भयभीत बिलकुल न थे, हाँ, सावधान ज़रूर थे।

लेकिन राजा को क्या पता कि उसी रोज़ उनके प्रदेश में डाकुओं का दल घुस आया था। राजा के अरबी घोड़े को देख वे उनके पीछे हो लिये थे। अचानक महाराज चारों तरफ़ से दस्युओं से घिर गये—पहली बार ऐसा हादसा हो रहा था, पल-भर के लिए राजा विचलित हो उठे... उधर डाकुओं के आक्रमण के पहले ही छह नौजवानों ने पीछे से उन पर धावा बोल दिया। डाकू सकते में आ गये। राजा को खरोंच तक न आयी।

ये छह नौजवान राजा के अंगरक्षक न थे। वैसे अंगरक्षक भी घटनास्थल पर तत्काल उपस्थित तो हो गये, लेकिन इन नये जवानों को देख सब के सब प्रश्नचिह्न-से बने खड़े रह गये। शीघ्र ही डाकुओं को बन्दी बना लिया गया। अब सुनें उन छह नौजवानों का क़िस्सा जो ऐन वक़्त पर राजा के अंगरक्षकों से पहले उनके बचाव के लिए लपक उठे थे। दरअसल वे छह दोस्त थे जो व्यापार के लिए अपना गाँव छोड़ कर इस प्रदेश में अपनी क़िस्मत आज़माने आये थे। इस देश के राजा की न्याय-प्रियता के डंके दूर-दूर तक बजा करते थे। यहाँ प्रवेश करते ही उनकी क़िस्मत भी उनके साथ-साथ हो ली, तभी तो राजा के बचाव के लिए वे ठीक वक़्त पर मौजूद थे।

रात की घटना अगली सुबह तक जंगल की आग की तरह सारे राज्य में फैल गयी। बच्चा, बूढ़ा, मर्द, औरत सभी उन छह नवयुवकों को देखने के लिए बेताब थे जिन्होंने उनके दाता की जान बचायी थी। दरबार में तिल रखने की भी जगह नहीं थी। पहले बन्दियों को पेश किया गया। उन बलिष्ठ पुरुषों की कद-काठी से प्रभावित राजा ने उनको यह सज़ा सुनायी —"वीरो, आज मैं तुम्हें अपनी दोस्ती के बन्धन में बाँध कर उम्र क़ैद की सज़ा सुना रहा हूँ। तुम सभी नौजवान मेरी सेना की शोभा बढ़ाओगे।"

पल-भर में राजा ने उन पुरुषों के माथे से दस्यु नामक कलंक का टीका मिटा दिया। यह सुन कर वे सभी महाराज के चरणों में प्रणत हो गये।

राजा की वाहवाही से सारा दरबार गूँज-गूँज उठा। इसके बाद दरबार में प्रवेश किया उन छह नौजवानों ने। उनको देखते ही महाराज सिंहासन से उठ कर उनके स्वागत के लिए आगे बढ़े। उनको गले से लगाया और अपने आसन के पास उन सबको आदरपूर्वक बिठलाया। एक बार फिर तालियों की गड़गड़ाहट जो उठी तो गूँजती ही चली गयी। उसके शान्त होने पर ही महाराज बोल सके—"मेरे शुभचिन्तको, मैंने इन दस्युओं को बन्दी बनाया और तुम छहों ने मुझे अपने प्रेम की डोर से जकड़ लिया। तुम्हारे एहसान का बदला तो न चुका पाऊँगा, लेकिन दोस्तो, माँग लो जो माँगना है, मेरे बस में हुआ तो देने में कोताही कभी न करूँगा।"

सभी चुपचाप बैठे रहे। "बन्धुओ, मेरी ख़ुशी की ख़ातिर कृपया कुछ तो माँगो..." राजा का मनुहार-भरा स्वर फूटा।

तब उम्र के हिसाब से सबसे वयस्क ने हाथ जोड़ कर कहा—"राजन्, हम धन कमाने के उद्देश्य से ही आपके प्रदेश में आये थे और यहाँ आकर तो रातोरात हमारी क़िस्मत ऐसी खुल गयी कि विश्वास ही नहीं हो पा रहा। महाराज, मैं हूँ झोंपड़ी में रहने वाला, मैं यही सपना लेकर चला था कि ख़ूब सारा पैसा कमा कर एक आलीशान मकान बनवाऊँगा...।"

महाराज ने उसी समय अपने कुशलतम स्थपति को बुला कर महलनुमा मकान बनाने का आदेश दे दिया।

दूसरे युवक ने विनम्र स्वर में कहा—"राजन्, मैं हूँ शूद्र जाति का, बचपन से मैं रातों को सपने देखा करता था कि ऊँचे वर्ग के लोगों, रईसों के साथ उठ-बैठ रहा हूँ। महाराज, आप मुझे कोई बड़ी उपाधि प्रदान कर सकेंगे क्या?"

राजा ने तुरन्त उसे अपने अभिजात-वर्ग के रत्नों के समकक्ष ला बिठाया, मान-सम्मान-पत्र और अतुलित धनराशि भेंट-स्वरूप प्रदान की।

तीसरे नवयुवक ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, मेरे गाँव के लोग हर हफ़्ते सौदा-सुलुफ़ करने शहर जाते हैं। गाँव से शहर का रास्ता बड़ा बीहड़ और ऊबड़-खाबड़ है। कृपया उनकी सुविधा के लिए उस रास्ते को ठीक करवा दीजिये ताकि उन्हें दिक्कत न हो।"

राजा प्रसन्न हो उठे। उनके एक इशारे से न केवल प्याउओं और छायादार वृक्षोंवाली पक्की सड़क बनाने का आदेश लिख लिया गया बल्कि

उसी समय उस गाँव के लोगों को अन्य दिक्कतों से उबारने के लिए लोग भी दौड़ाये गये।

अब आयी चौथे युवक की बारी। उस सुदर्शन नौजवान ने शरमाते-सकुचाते हुए अपनी इच्छा प्रकट की—"राजन्, आप मेरे पिता-समान हैं, आप मेरा विवाह किसी योग्य कन्या से करवा दीजिये तो मैं आजीवन सुखी रहूँगा।"

राजा ने पल-भर के लिए कुछ सोचा, फिर उनकी नज़रें अपने प्रिय मन्त्री पर गयीं; मन्त्री का चेहरा खिल उठा और उनकी पुत्री के साथ उस युवक के विवाह की तारीख़ उसी समय निश्चित हो गयी।

पाँचवे युवक ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज! अपना व्यापार शुरू करने के लिए मैं बस कुछ पैसा चाहता हूँ, उसके बाद मैं अपने बल-बूते को परखूँगा।" महाराज अशरफ़ियों से भरा एक बड़ा थैला उसे भेंट-स्वरूप देते हुए महामन्त्री के कान में फुसफुसाये—"इसके व्यापार के फलने-फूलने की ज़िम्मेवारी आपकी रही मन्त्रिवर!"

अब आयी अन्तिम यानी छठे नौजवान की बारी। उसने सिर झुका कर कहा—"राजन्, मेरी एक ही मनोकामना है। कृपा करके हर साल आप एक दिन के लिए मेरे घर पर मेहमान बन कर रहिये।"

सभी सभासद् चकित रह गये, सारी जनता में घुसुर-पुसुर शुरू हो गयी। स्वयं राजा भी कुछ भौचक्के हो उठे। सबके मन में एक ही विचार कौंधा—"कैसी बेतुकी-सी माँग कर बैठा यह?" महाराज को इस माँग को स्वीकार करने में भला क्या आपत्ति हो सकती थी? उन्होंने सहर्ष कहा—"वादा रहा नौजवान! हम हर साल एक दिन और एक रात तुम्हारे घर पर बितायेंगे।"

बच्चो, क्या तुम्हें भी छठे नौजवान की बात उतनी ही बेतुकी लगी जितनी बाक़ी सबको? जानते हो, उसने अपनी एक सरल-सी माँग से सचमुच सब कुछ माँग लिया था।

अगले दिन से राज्य के विभिन्न विभाग राजा की वार्षिक भेंट की तैयारी में जुट गये।

सबसे पहले यह ज़रूरी था कि इस राज्य से उस जवान के घर तक की सड़क राजकीय हो ताकि महाराज का रथ उस पर सरपट दौड़ सके। फिर

सवाल उठा कि महाराज गोशाला जैसी उस झोंपड़ी में भला कैसे सोयेंगे। आनन-फ़ानन उस कुटिया की जगह एक महाप्रसाद का निर्माण शुरू हो गया। अब यह सवाल मुँह बाये खड़ा था कि अपनी धेले-भर की कमाई से वह नौजवान इतने बड़े महल का रख-रखाव और महाराज के पधारने पर उनकी आवभगत कैसे करेगा? तुरन्त राजमहल के कोष से उसके लिए मासिक आय का प्रबन्ध हो गया। नौकर-चाकरों की बारात लग गयी।

एक सवाल और भी था—उस राज्य की पुरानी परम्परा के अनुसार राजा केवल अभिजात-वर्ग के लोगों के ही अतिथि बन सकते थे, अतः उस नौजवान को बिना माँगे कुलीन-वर्ग की उपाधि मिल गयी। अब उसकी हैसियत किसी राजकुमार से कम न थी।

और अन्तिम चरण पर आकर आख़िरी सवाल ने भी अपना सिर उठा लिया—महाराज की आवभगत करने का सलीका तो वही जानता होगा जो राजमहल का हो, महाराज के क़रीब हो, उनकी पसन्द, नापसन्द को अच्छी तरह समझता हो। और इन सबके लिए भला राजकुमारी से अधिक उपयुक्त पात्र और कौन हो सकता था? हमारा छठा नौजवान अत्यन्त सुदर्शन था, अब उसके पास धन-यश-उपाधि सब कुछ था। राजकुमारी विवाह के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गयी। ज़ोर-शोर से विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गयीं और धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ।

तो देखा बच्चो! माँगा हुआ एक सरल-सा वर कितने ही अनमाँगे वरों को अपने साथ-साथ लेता आया!

कहानी तो यहीं ख़त्म हो गयी, लेकिन क्या यह अपने पीछे एक सन्देश नहीं छोड़ गयी? निस्सन्देह। और क्या आज हम भी अपने राजाधिराज ईश्वर से यह सरल-सा वर नहीं माँग सकते कि हे प्रभो! हमारे हृदय-गृह में पधारना ज़रूर। और तब हमें अपने मन्दिर की सफ़ाई, साज-सज्जा के लिए एकजुट हो जाना होगा ताकि जब वे सर्वेश्वर हमारा द्वार खटखटायें तो हम उनके स्वागत के लिए हर तरह से प्रस्तुत हों।

और फिर एक दिन आयेगा जब हम इतने पूर्ण बन जायेंगे कि उन्हें दस्तक देने की ज़रूरत तक न पड़ेगी क्योंकि हमारे मन्दिर के कपाट उनकी अगवानी के लिए हमेशा खुले रहेंगे।

'पुरोधा', फ़रवरी २००६ से —वन्दना

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनू
श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनू (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमाँ के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगा कर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनू—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

Date of Publication: **1st June 2020**
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2019-20

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363